संस्कृत-वृत्तदर्पण

(छन्दों का विश्लेषणात्मक अध्ययन)



डॉ० श्री इन्द्रनाथ झा

संस्कृत-वृत्तदर्पण

(छन्दों का विश्लेषणात्मक अध्ययन)

डा० श्री इन्द्रनाथ झा

एम० ए० (द्वय), साहित्याचार्य, पी-एच० डी०

उपाचार्य एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, मारवाड़ी महाविद्यालय, दरभंगा

(ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा)

SANSKRIT–VRITTA DARPAN

[An Analytical Study of Sanskrit Chhandas]

प्रकाशक :

प्रतिमा प्रकाशन, दरभंगा

मूल्य : सजिल्द : 140.00

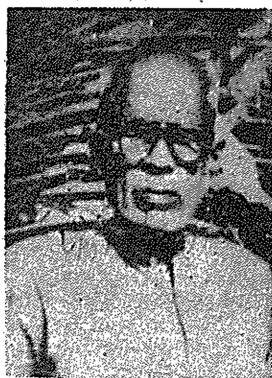
छात्र संस्करण : 100.00

सम्पर्क सूत्र :

प्रोफेसर कॉलोनी, दिग्घी पश्चिम, दरभंगा

मुद्रक : कुमार प्रिंटिंग प्रेस, गुल्लोबाड़ा, दरभंगा

संवत् : 2053



स्व० गिरिधर झा 'विकल' विशारद

[अप्रिल 1913–दिसम्बर 1983]

श्रद्धेय

पितृचरणाम्बुज में

सादर समर्पित

शुभाशंसा

डॉ० इन्द्रनाथ झा द्वारा विरचित **'संस्कृत-वृत्तदर्पण'** देखकर चित्त में अमन्दानन्द धारा प्रवाहित हुई। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक छन्दों के विविध पक्षों का बहुमुखी विकास-परिष्कार एवं संबर्द्धन परिलक्षित होते हैं। भारतीय मनीषा ने अनेकानेक आकर-ग्रन्थों के निर्माण कर ज्ञान की इस शाखा को नये-नये आयाम प्रदान किये हैं। पारम्परिक ज्ञान-राशि को संचित एवं सुरक्षित रखने में छन्द की महती भूमिका स्वीकृत की गयी है। अतएव काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त कोष, ज्यौतिष, आयुर्वेद प्रभृति क्षेत्रों का भी छन्दोमय होना भारतीय वाङ्मय का अन्यतम वैशिष्ट्य है। सामान्यतः ज्ञान की इस छन्दः-शाखा के अध्ययन में अभिरुचि का अभाव परिलक्षित होता है किन्तु काव्य-संरचना में इसकी उपादेयता को ध्यान में रखकर विद्वान्-लेखक डॉ० झा ने प्रचलित एवं ख्यापित छन्दों के लक्ष्य-प्रकृति के अनुकूल लक्षणों का सोदाहरण विशद निरूपण प्रस्तुत कर सारस्वत जगत् का महान् उपकार किया है। एतदर्थ मैं इन्हें हृदय से साधुवाद देता हूँ कि प्रस्तुत ग्रन्थ छन्दः शास्त्र के शिक्षक, एवं शिक्षार्थियों के लिए अत्यन्त ही उपकारक हो तथा मेरी शुभाशंसा है कि इनकी एतादृश लेखन-परम्परा बनी रहे।

डॉ० कालिकादत्त झा
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर दरभंगा

आमुख

संस्कृत छन्दों के उद्भव और विकास की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है। भारतीय आर्यसंस्कृति के प्राचीनतम काल से ही विभिन्न कृतियों को स्थायित्व तथा सौष्ठव प्रदान करने के लिए उन्हें छन्दोबद्ध रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की जाती रही है। फलस्वरूप वैदिक काल से लेकर आधुनिक आर्यभाषाओं के कालतक संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-आधुनिक आर्य छन्दों का निरन्तर विकास होता रहा और पूर्वतः प्रचलित छन्दों के विभिन्न तत्त्वों-पादों, पादांशों तथा अक्षरानुक्रमों के परिवर्तन-परिवर्धन के द्वारा नये छन्दों के आविष्कार की प्रक्रिया चलती रही। वस्तुतः यह तथ्य अनुपेक्षणीय है कि विभिन्न वेद और रामायण-महाभारत आदि शाश्वत मूल्यवाले अनेक ग्रन्थ अधिकांशतः छन्दोबद्धता के कारण ही दिक्काल की दुर्लंघ्य सीमाओं को लाँघ कर मानव विकास के माध्यम के रूप में हमें दिशा-निर्देश देते आ रहे हैं।

इस प्रकार वेदों के चरणों के रूप में परिगणित उक्त वेदाङ्ग की विशिष्टता से परिचित छन्दोमर्मज्ञ आचार्य छन्दोविधान की विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रतिपादन तथा विवेचन-विश्लेषण करते आ रहे हैं।

इसी शृङ्खला की एक समर्थ कड़ी के रूप में डॉ० इन्द्रनाथ झा द्वारा लिखित **'संस्कृत-वृत्त-दर्पण'** हमें उपलब्ध हुआ है। डॉ० झा ने तीन अध्यायों में विभक्त तथा उतने ही परिशिष्टों से संबलित अपनी इस रचना में संस्कृत छन्दोविधान के विभिन्न घटक तत्त्वों का बड़ी सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। छन्दों के वृत्त-जाति-भेदों के विभिन्न पक्षों के विवेचन-विश्लेषण के साथ अक्षर-गण-मात्रा-विन्यास पद्धति आदि की सरल-सुबोध व्याख्या इस कृति की अन्यतम विशिष्टता है।

मेरा विश्वास है कि डॉ० इन्द्रनाथ झा की इस कृति से संस्कृत छन्दःपरम्परा के स्वरूपज्ञान की सरल मार्ग प्रशस्त होगा और इनकी यह कृति जिज्ञासु शिक्षार्थियों तथा विद्वानों के बीच समान रूप से समादृत होगी।

मेरी हार्दिक कामना है कि डॉ० झा निरलस भाव से अपनी रचना-प्रक्रिया को निरन्तर आगे बढ़ाते रहें।

डॉ० शक्तिधर झा
सेवानिवृत्त प्राचार्य संस्कृत विभाग,
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

प्राक्कथन

वाचामीश्वरि ! भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि
गद्यप्राकृतपद्यजातरचना सर्वार्थसिद्धिप्रदे ।
नीलेन्दीवरलोचनत्रययुते ! कारुण्यवारांनिधे
सौभाग्यामृतवर्धनेन कृपया सिञ्च त्वमस्मादृशम् ॥

छन्दोविषयक **'संस्कृत-वृत्तदर्पण'** आपलोगों के समक्ष प्रस्तुत है। ग्रन्थ लेखन **'तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्'** छोटी सी नाव से सागर को पार करने के समान बड़ा ही दुरूह कार्य है। लेकिन मैंने सोचा कि **'काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद् भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति'** जब काष्ठ को रगड़ने से अग्नि और खनन करने पर भूमि से जल निकाला जा सकता है तो उत्साही एवं साहसी व्यक्तियों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं, कोशिश करने पर निश्चित ही फल देते हैं– **'सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति'**। ऐसा विचारकर कोमलमति पाठकों एवं सुधी जनों-दोनों के लिए छन्दोविषयक ग्रन्थ-रचना करने की कोशिश की है। मेरे शोध-प्रबन्ध का विषय भी **'बृहत्त्रयी में छन्दोविधान-एक विमर्श'** छन्दोविषयक ही है। शोध-कार्यकाल में सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन से सम्बन्धित छन्दःशास्त्रीय अपर्याप्तता का अनुभव किया। लक्षणा, व्यञ्जना, रस, अलंकार आदि के धायक जिस काव्यामृत-पान से 'कान्तासम्मितोपदेश' तथा 'ब्रह्मानन्दसहोदर' आनन्द का अनुभव होता है, इसके लिए छन्दोज्ञान होना अत्यावश्यक है।

वैदिक एवं लौकिक वाङ्मय में छन्दःशास्त्र का एक विशिष्ट स्थान है। वैदिककाल में सात ही प्रकार के छन्द थे। ये छन्द अक्षर प्रधान थे। लौकिक संस्कृत काल में आकर इन्हीं छन्दों से सैकड़ों छन्द विकसित एवं परिष्कृत हुए। छन्दोबद्ध पद्य गुरु-लघु-क्रम में अक्षरों के निश्चित क्रम से विनियोजित होते हैं। छन्दों में बाँधी गयी भाषा की ध्वनियाँ नियन्त्रित होती हैं। इसलिये यहाँ अक्षरों के लघु-गुरु क्रम में थोड़ा सा भी हेर-फेर नहीं किया जा सकता है। प्राकृतपैङ्गल में पिङ्गलमुनि ने कहा है कि जिस प्रकार सोना तौलने का काँटा तिल के आधे या चौथाई अंश को न्यूनाधिक होने पर नहीं सह पाता, उसी प्रकार श्रवण-तुला छन्दोभंग के कारण भ्रष्ट उच्चारण नहीं सह पाती। यथा–

जभण सहइ कण अतुला, तिल तुलिअं अद्ध अद्धेण ।
तमण सहइ सवण तुला, अपछंदं छंदभंगेण ॥ प्राकृतपैङ्गलम्-10

इस प्रकार छन्द की भाषा सुमधुर एवं स्पृहणीय होती है तथा साथ ही संप्रेषण-शक्ति की वृद्धि करती है। छन्द थोड़े ही शब्दों में विस्तृत भावों को सम्पुटित कर सुरक्षित रखता है– **'छन्दयति संवृणोति भावानिति छन्दः'**।

'संस्कृत-वृत्तदर्पण' तीन अध्यायों में विभक्त है। छन्दोविधान की वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-परंपरा–ये दो परम्परायें प्रचलित हैं। इस विषय को ध्यान में रखकर प्रथम अध्याय में छन्द-अवतारणा-अवधारणा, संस्कृतवृत्त की उत्पत्ति-विकास, विनियोग, परम्परा

अनुशीलन, विशेषताएँ, वर्गीकरण, विस्तार, प्रस्तारविधि, उद्दिष्टविधि, नष्टविधि के साथ-साथ यति का भी विश्लेषण किया गया है। छन्द एवं वृत्त एक रहते हुए भी दोनों में अन्तर को दिखाया गया है। प्रारम्भ में छन्द अक्षर प्रधान थे। गुरु-लघु क्रम में प्रतिपाद अक्षरों की चतुर्धावृत्ति नहीं होती थी। संस्कृत काल में आकर छन्द नियमित हो गये और पादों की चतुर्धावृत्ति होने लगी तथा अक्षरों के लघु-गुरु क्रम भी नियन्त्रित हो गये, तब से छन्द वृत्त कहे जाने लगे (**छन्दसि वर्तते इति वृत्तम्**), किन्तु मूलतः दोनों एक ही हैं। द्वितीय अध्याय में मात्रा-प्रकरण के रूप में मात्रा एवं मात्रागण पर विचार किया गया है। आर्यादि मात्रावृत्तों के लक्षण सोदाहरण दिये गये हैं। तृतीय अध्याय में वर्ण-प्रकरण के रूप में वर्णवृत्त पर विचार किया गया है। यहाँ वर्णवृत्तों के लक्षण एवं उदाहरण दिये गये हैं। वृत्तों के लक्षण एवं उदाहरण विभिन्न ग्रन्थों के अनुशीलन करने के बाद दिये गये हैं। यहाँ इस बात पर ध्यान रखा गया है कि यह **'संस्कृत-वृत्तदर्पण'** छात्रों एवं विद्वद्वर्ग-दोनों के लिए समानरूप से उपयोगी हो सके। इसलिये इसे यथासम्भव बोधगम्य बनाने की चेष्टा की गयी है।

'संस्कृत-वृत्तदर्पण' रचनाक्रम में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अनेक विद्वानों ने सहायता दी है। सर्वप्रथम डॉ० श्री शक्तिधर झा जी, भूतपूर्व प्राचार्य, संस्कृत-विभाग, ललित नारायण, मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर छन्दःशास्त्र के विषय में गम्भीरतम विचारों का दिग्दर्शन कराया है। डॉ० श्री कालिकादत्त झा, प्राचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृतविभाग ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा का भी मैं अत्यधिक आभारी हूँ, जिन्होंने इसकी रचना के क्रम में मेरी यथासाध्य सहायता की है। सर्वोपरि मैं अपने श्रद्धेय पिताजी स्व० गिरिधर झा, 'विकल' विशारद (ग्राम मंगरौनी वर्तमान-पिलखवार-मधुबनी) चित्रकार एवं साहित्यकार के चरण-कमलों में कोटिशः नमन करते हुए यह पुस्तक अर्पण कर श्रद्धाञ्जलि देता हूँ जिनकी उत्प्रेरणा से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। इसके अतिरिक्त डा० श्री बौआनन्द झा, उपाचार्य, दर्शन विभाग एवं डॉ० श्री शशिनाथ झा, उपाचार्य, व्याकरण विभाग-का० सिं० द० संस्कृत विश्वविद्यालय, के हम अत्यधिक आभारी हैं जिन्होंने ग्रन्थों एवं तद्विषयक विद्वतापूर्ण जानकारी देने में मुझे काफी योगदान दिया है। अपने इष्ट मित्रों के साथ-साथ भ्राता श्री रवीन्द्रनाथ झा, उप-महाप्रबन्धक, नवार्ड, पटना, प्रो० श्री कृष्णकान्त मिश्र, सेवा निवृत्त, क्यूरेटर, चन्द्रधारी म्युजियम दरभंगा सम्प्रति संचालक एवं प्रधान सम्पादक, वैदेही समिति, दरभंगा एवं डॉ० श्री विजयचन्द्र झा का भी मैं कम आभारी नहीं हूँ जिनके अश्रान्त प्रयास एवं कार्य-कौशल से यह ग्रन्थ प्रेस तक पहुँचा है। इस पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ हों यह स्वाभाविक है, इसलिए इन त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ :-

'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।'

श्री इन्द्रनाथ झा

संस्कृतवृत्त-दर्पण-विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

मात्रावृत्त-प्रकरण

तृतीय अध्याय

वर्णवृत्त-प्रकरण

समवृत्त-प्रकरण

पुस्तकों के लिए प्रयुक्त संक्षिप्त अभिधान

1.	अभि० शाकु०	अभिज्ञानशाकुन्तल
2.	अविमारक ना०	अविमारक नाटक
3.	उ० रा० च०	उत्तररामचरित
4.	का० क०	काव्य कल्लोलिनी
5.	कि०	किरातार्जुनीय
6.	छन्दोऽनु०	छन्दोऽनुशासन
7.	छ० मं०	छन्दोमञ्जरी
8.	छ० शा०	छन्दःशास्त्र
9.	छ० सू०	छन्दःसूत्र
10.	ना० शा०	नाट्यशास्त्र
11.	नै०	नैषधीय चरित
12.	प्रतिमा ना०	प्रतिमा नाटक
13.	प्र० रा०	प्रसन्नराघव
14.	बृ० स्तो० र०	बृहत् स्तोत्ररत्नाकर
15.	भट्टि०	भट्टिकाव्य
16.	भ० नी० श०	भर्तृहरिनीतिशतक
17.	भा० वि०	भामिनीविलास
18.	महा० अनु०	महाभारत अनुशासनपर्व
19.	मेघ०	मेघदूत
20.	रघु०	रघुवंश
21.	रामा० सुन्द०	वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड
22.	वृ० र०	वृत्तरत्नाकर
23.	वा० व०	वाग्वल्लभ
24.	वा० रामा० सु०	वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड
25.	वा० रा० यु०	वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड
26.	शिशु०	शिशुपालवध
27.	श्रीमद्भा० महा०	श्रीमद्भागवत महापुराण
28.	स्वप्न०	स्वप्नवासवदत्त
29.	सा० वै०	साहित्य वैभव
30.	सि० कौ०	सिद्धान्त कौमुदी
31.	सौ० न०	सौन्दरनन्द

प्रथम अध्याय

छन्द

यह निर्विवाद सत्य है कि वैदिक भाषा प्राचीनतम और लौकिक संस्कृतभाषा प्राचीन है। आरम्भिक काल वैदिक भाषा का है तो परवर्ती काल लौकिक संस्कृत-भाषा का। भाषा वैज्ञानिकों ने वैदिक और लौकिक भाषाओं का विकास क्रमशः माना है। पाणिनि ने वैदिक भाषा तथा लौकिक संस्कृत के लिये क्रमशः 'छन्दस्' एवं 'भाषा' शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग मात्रा या अक्षर के व्यापकत्व (विस्तार) का बोध कराता है। छन्द के मूल में यही अक्षर शब्द के रूप में विभिन्न छन्द का स्वरूप प्रदान करता है। अतः अक्षर छन्दोमय होता है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने इसी आशय की ओर संकेत करते हुए कहा है–

छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति

न छन्दः शब्दवर्जितः ॥[1]

कात्यायन ने भी कहा है कि–

छन्दोमूलमिदं सर्वं वाङ्मयम्

अर्थात् सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय छन्दोमय है। यद्यपि वैदिक वाङ्मय गद्य में भी उपलब्ध है किन्तु 'सर्वं' का तात्पर्य प्रचुरता को ध्यान में रखकर कहा गया है। लौकिक संस्कृत में भी छन्दों की प्रधानता है। आदिकाव्य रामायण तथा महाभारत की रचनाओं से लेकर पुराण, गणित, भूगोल, कोष, कथा, नाटक, महाकाव्यादि तथा आधुनिक संस्कृत-रचनाओं तक में सर्वत्र छन्द की प्रमुखता एवं इसका विकसित रूप देखने को मिलता है। कवि-प्रतिभा प्रसूत काव्यसंरचना को संतुलित बनाने में छन्द का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। वास्तव में भाषा-स्वरूप निर्धारण एवं स्थायित्व प्रदान करने में तथा भाव को सशक्त और आकर्षक रूप देने में छन्दों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। छन्दोबद्धता के कारण काव्यादि रचनाओं का स्वरूप परिष्कृत होता है और पढ़ने वाले रसज्ञों को अमृत-पान सदृश आनन्द का अनुभव होने लगता है। छन्दोबद्ध होने से पद्यों को कण्ठस्थ करने में सुविधा होती है। इस प्रकार साहित्यिक रचनाओं में छन्दों का महत्त्व सर्वाधिक प्रतीत होता है।

छन्द-व्युत्पत्ति और अर्थ–'छन्द' शब्द 'छदि आवरणे' धातु से निष्पन्न है। इसका अर्थ है–आच्छादित करना या ढकना–'छन्दांसि छादनात्'[2]। कुछ विद्वान् 'चदि आह्लादे'

1. ना० शा०–14/40
2. (क) निरुक्त–दैवतकाण्ड–प्रथम अध्याय
   (ख) छादनाच्छन्द इत्युक्तं वाससी वायवां कृते।
   आत्मा तु छादितो दैवैर्मृत्योर्भीतैस्तु वै पुरा ॥
   आदित्यैव सुतोरुद्रैस्तेन छन्द इतीरितम्। इत्यादि–छन्दःशास्त्र सुखबोधिनी में उद्धृत पृ० 10

धातु से भी 'छन्द' शब्द की व्युत्पति मानते हैं जिसका अर्थ है– आह्लादित करना या आनन्दित करना–'चन्दयति' इति छन्दः' । दोनों प्रकार के विद्वान् अपने समर्थन में युक्ति देते हैं । प्रथम पक्ष का कहना है कि देवों ने शत्रु (असुर) से अथवा मृत्यु से डरकर वेद का आश्रय लिया और स्वयं को वेदमन्त्रों याने छन्दों में छिपा लिया था–**'यदे-भिरात्मानमाच्छादयन्'**[1] इत्यादि । यही छन्दस्त्व है । अथवा **'संतापाद् वारयति'**[2] संताप से छत्र या कवच की भाँति आच्छादित करता है, यही छन्दस्त्व है । दूसरे पक्ष का कहना है कि ज्ञान, कर्म, उपासना इन त्रयी विद्या के प्रतिपादक वेद के द्वारा स्वर्गादि लोकों (सुखों) की प्राप्ति होती है । यही छन्दस्त्व है और वेदत्व भी, क्योंकि 'वेद' शब्द भी 'विन्दि प्राप्तौ' धातु से निष्पन्न होता है–**'विन्दन्ति अनेन स्वर्गादि लोकान्'** इति वेदः । वेद के द्वारा स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है । वैदिक काल में छन्दों की श्रुतिपेशलता वांछित तत्त्व थी, इसका प्रमाण नही मिलता है, किन्तु **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'**[3] इस कथन के द्वारा साम स्वर की महत्ता का प्रतिपादन छन्द के आह्लादक होने का प्रमाण माना जा सकता है । प्रायः द्वितीय पक्ष इसी कारण से 'छन्द' शब्द की व्युत्पत्ति 'चदि आह्लादे' धातु से मानना चाहता है । अथवा चदि धातु भी आवरणार्थक ही माना जा सकता है क्योंकि जिस वस्त्र द्वारा धूप-निवारणार्थ छाया की जाती है उसे 'चन्दोवा' कहते हैं । यह चन्दोवा शब्द 'चन्दो वस्त्र' का ही विकृत रूप है । शीतनिवारणार्थ ओढ़े जाने वाले वस्त्र के लिए 'चादर' शब्द भी 'चदि' धातु से निष्पन्न है । इस प्रकार दोनों पक्ष के आचार्य 'छन्द' का अर्थ समान रूप से आवरक और संतापहारक मानते प्रतीत होते हैं । परन्तु इससे छन्द का कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं उपलब्ध होता है । वास्तव में यदि देखा जाय तो छन्द भाव को आवृत करता है तथा सुरक्षित भी रखता है । क्रान्तदर्शी ऋषियों ने देवता सम्बन्धी भाव को आवृत कर सुरक्षित किया था । प्राचीन काल से यही क्रम आज भी चला आ रहा है । छन्दों में निबद्ध भाव सुरक्षित रहते हैं कभी नष्ट नहीं होते । यही छन्द का छन्दस्त्व है । बाद में सामान्यतया वेदों के लिए छन्दः शब्द का प्रयोग होने लगा ।

वैदिकोत्तर काल में याने परवर्ती लौकिक संस्कृत काल में छन्दः शब्द का अर्थ अनेक

---

1. छान्दोग्योपनिषद् 1. 4. 2
2. (क) पुरुषस्य पापसम्बन्धं वारयितुमाच्छादकत्वात् छन्द उच्यते
   अथवा (ख) 'छादयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापकर्मण' :–सायण
   (ग) चीयमानस्याग्निसन्तापस्याच्छादकत्वाच्छन्द–सायण
3. श्री मद्भगवद्गीता

अर्थों में प्राप्त होता है । यथा–स्वैराचार, पद्य, अभिप्राय, वश आदि विभिन्न अर्थों में इसका प्रयोग प्राप्त होता है ।[1]

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक वाङ्मय से लेकर लौकिक संस्कृतसाहित्य में छन्दः शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में किया गया है । परंच अधुना छन्दः शब्द की जिस अर्थ में प्रसिद्धि मिली है वह है नियन्त्रित पद एवं पाद से निबद्ध रचना ।

अवतारणा और अवधारणा

छन्द वैदिक मन्त्रों का वह घटक तत्त्व है जिस पर मन्त्रों का आकार निर्भर करता है । यह अक्षरों की जाति या आकार के रूप में नित्य रूप से वर्तमान रहता है । छन्दों का स्वरूप-निर्धारण मूलतः अक्षरों की संख्या पर निर्भर करता है । वैदिक छन्द अक्षर प्रधान है । अतएव कात्यायन ने इसको परिभाषित करते हुए कहा है– **''छन्दोऽक्षर परिमाणम्''** [2(क)] अर्थात् छन्द अक्षर का परिमाण=आकार या विस्तार को कहा जाता है । अथवा **'यदक्षर परिमाणं तच्छन्दः** [(ख)] अर्थात् अक्षर का परिमाण=आकार या विस्तार या मात्रा को छन्द कहते हैं । छन्द यद्यपि प्रत्यक्षर में विद्यमान रहता है तथापि मन्त्रों के आकार को समझने के लिए छन्दोविषयक अवधारणा वैदिक काल में विकसित हो चुकी थी तथा छन्दों को नियताक्षर-परिमाण का ज्ञापक माना जाने लगा था । एक अक्षर से 104 अक्षर-परिमाणवाले छन्दों की कुल संख्या 26 तक पहुँच चुकी थी, किन्तु आरंभ में कुल सात[3] ही छन्द थे

---

1. ''यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत्''–मनुस्मृति 4/100
''अभिप्राय''–यथा वा० रामायण 2/9/7
''अभिलाषा''–यथा महाभारत–12/20/12
''पद्यम्''–इति मेदिनी–22
''वशः''–इति अमरः–3/3/88
''विज्ञाप्यतां देवि यस्ते छन्द'' इति–विक्रमोर्वशीयम्–पञ्चम अङ्क
''षष्ठेकाले त्वमपि दिवसस्यात्मनश्छन्दवर्ती''–विक्रमोर्वशीयम्–5
''स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता''–उत्तररामचरितम्–3/48
''त्वया अनुकम्पिता उपच्छन्दिता उदकेन''–अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5
''प्रणवश्छन्दसामिव'' रघुवंश 1/11, याज्ञवल्क्य 1/143
''ऋक्छन्दसामाशास्ते''–शाकुन्तलम्–4
''गायत्रीछन्दसामहम्''–श्री मद्भगवद्गीता 10/35, 13, 14
2. (क) ऋक्सर्वानुक्रमणी–कात्यायन
(ख) सर्वानुक्रमणी–कात्यायन
3. (क) गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती च प्रजापते ;।
पंक्ति–त्रिष्टुभ् जगती च सप्त छन्दांसि तानिह ।।'' इति शौनक ऋक्प्रातिशाख्य । 16/1
(ख) चतुः शतमुत्कृतिः–4/1 छ० शा०

जिन्हें मूल वैदिक छन्द कहा जाता है। पिङ्गल-प्रणीत 'छन्दःशास्त्र' में छन्दों के वर्ण-दैवत निरूपण-प्रकरण[1] के अवलोकन से भी यही प्रमाणित होता है कि आरंभ में सात ही छन्द थे, जिनसे एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा अन्य छन्दों का विकास हुआ। आरंभ के ये सात छन्द क्रमशः गायत्री (छः अक्षर) उष्णिक् (सात अक्षर), अनुष्टुप् (आठ अक्षर), बृहती (नौ अक्षर), पंक्ति (दस अक्षर), त्रिष्टुप् (ग्यारह अक्षर) और जगती (बारह अक्षर) हैं।[2]

वैदिक छन्दोविधान

वैदिक छन्दोविधान पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि छन्दोविधान का निश्चित क्रम है–अक्षर और पाद। वैदिक काल में छन्दों का निर्धारण मात्र अक्षर-संख्या के आधार पर होता था। इसमें अक्षर की गुरु तथा लघु मात्रा पर ध्यान नहीं दिया जाता था। ये अक्षर पाद की सीमा में आबद्ध रहते हैं। छन्दों के आंशिक विस्तार या एकदेश या एक भाग को पाद माना गया था। वैदिक छन्दोविधान में मात्र चार तरह के पादों का उल्लेख मिलता है[3]– 1. गायत्री (अष्टाक्षर पाद), 2. जगती (द्वादशाक्षरपाद), 3. त्रिष्टुप् (एकादशाक्षर पाद) और 4. विराज (दशाक्षर) पाद। इस प्रकार **'छन्दोऽक्षर-परिमाणम्'** की तरह **'पादाक्षर-परिमाणम्'** भी अभिप्रेत माना गया प्रतीत होता है। गायत्री आदि संज्ञाएँ छन्द के साथ-साथ पादों की भी थी। वस्तुतः 'छन्द' पादान्तर्गत एक पूर्ण विस्तार को माना गया था जबकि पाद एकदेशीय, अपूर्ण और आंशिक विस्तार को।[4] छन्द में जिस प्रकार अक्षर-संख्या नियत होती थी उसी प्रकार पादों की संख्या भी निश्चित होती थी। अतः नियताक्षर-परिमाण नियताक्षर-संख्या तथा नियत पाद-संख्या का ज्ञापक गायत्री आदि छन्दोऽभिधान (संज्ञाएँ) थी, यह सिद्ध होता है।

पाद-परिमाण–वैदिक छन्दोविधान में पादों का आकार निश्चित माना गया था। कभी-कभी पादाक्षर-संख्या कम होने से अक्षरों की संख्या की पूर्ति के लिए भावरूप

---

1. (क) अग्निः सविता सोमो बृहस्पतिर्वरुणइन्द्रो–
   विश्वेदेवा देवताः–छन्दःशास्त्रम् 3/63
   (ख) आग्निवेश्य-काश्यप-गौतमाङ्गिरसभार्गव–
   कौशिकवाशिष्ठानि गोत्राणि–छ०शा० 3/66
   तथा च–'गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहतीपंक्तिरेव च।
   त्रिष्टुप् च जगती चैव छन्दांस्येतानि सप्त वै॥ छ० शा० सुखबोधिनी में उद्धृत पृ० 107
   (ग) सितसारङ्गपिशङ्गकृष्णनीललोहितगौरवर्णाः–छ० सू० 2/65
2. तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यः–छ० सूत्र 2/14
3. (क) गायत्र्या वसवः–छन्दःसूत्र 3/3
   (ख) जगत्या आदित्याः–छ० सू० 3/4
   (ग) विराजो दिशः–छ० सू० 3/5
   (घ) त्रिष्टुभो रुद्राः–छ० सू० 3/6
4. पादश्चतुर्भागः–छ० सू० 4/11

संधियों को तोड़कर व्यूह (पृथक्) कर देने का प्रावधान है।[1] पिङ्ग लमुनि ने इस प्रकार के छन्दोदोष के परिहार की व्यवस्था दी है। उदाहरणस्वरूप 'वरेण्यम्', 'त्र्यम्बकम्' इत्यादि शब्दों में 'त्रियम्बकम्', 'वरेणियम्' इत्यादि प्रकार से पढ़ने की व्यवस्था है।[2] इससे छन्दोदोष भी नहीं लगता है और पादाक्षर-संख्या कम होने से अक्षर का विस्तार कर देने से पाद भी सम बन जाता है। अत: वैदिक काल में पाद-परिमाण सुव्यवस्थित हो गया था। प्रारंभ में कुल चार तरह के पाद थे, किन्तु छन्दों के विकास के साथ-साथ पादों का भी विकास हुआ और 'अतिजगती' आदि छन्दोऽभिधान अतिजगती आदि पादों का भी ज्ञापक बन गया। इस तरह गायत्री आदि कुल 21 छन्दोऽभिधान 21 प्रकार के पादों का भी अभिधान बन गया और वैदिक छन्द: पादों की संख्या चार से इक्कीस हो गयी। गायत्री आदि पादों में प्रतिपाद एक-एक अक्षर की वृद्धि कर उत्तरोत्तर बृहती (नवाक्षर) आदि पाद बनाये गये[3]। इक्कीस प्रकार के छन्द: पादों के नाम क्रमश: 1. गायत्री, 2. उष्णिक्, 3. अनुष्टुप्, 4. बृहती, 5. पङ्क्ति, 6. त्रिष्टुप्, 7. जगती, 8. अतिजगती, 9. शक्वरी, 10. अतिशक्वरी, 11. अष्टि, 12. अत्यष्टि, 13. धृति, 14. अतिधृति, 15. कृति, 16. प्रकृति, 17. आकृति, 18. विकृति, 19. संकृति, 20. अतिकृति, 21. उत्कृति हैं।[4]

पाद-संख्या : वैदिक छन्दोविधान में पादों की संख्या निश्चित नहीं थी।[5] किसी-किसी छन्द में पादों की संख्या एक से लेकर तेरह तक होती थी। वस्तुत: वैदिक छन्द अक्षर-प्रधान थे। यह अक्षरों की गणना पर आधारित था। छन्द के लिए निर्धारित अक्षर-संख्या की पूर्त्ति चाहे जितने पादों से हो, की जाती थी। वेद का आद्य छन्द गायत्री है। छन्द:शास्त्र के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि गायत्री छन्द से ही अन्य छन्दों का विकास हुआ है। पिङ्गलमुनि ने भी इसे आद्य छन्द कहकर इसका ही प्रथम उपदेश दिया है।[6] श्री मद्‌भगवद् गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने इस बात की पुष्टि की है।[7] इस गायत्री

---

1. (क) इत्यादि पूरण:-छ० सू० 3/2
   (ख) व्यूहेदेकाक्षरीभावान् पादेषूनेषु सम्पदे।
   क्षैप्रवर्णांश्च संयोगात् व्यवेयात् सदृशै: स्वरै:॥'' ऋक् प्रातिशाख्य 17/36
2. त्र्यम्बकं यजामहे। 'तत्सवितुर्वरेण्यम्। दिवंगच्छ स्व: पते। यहाँ त्रियम्बकम्, वरेणियम् तथा सुव: ऐसा उच्चारण करने पर पादाक्षर-संख्या आठ पूर्ण हो जाती है।
3. आरभ्यैकाक्षरात् पादादेकैकाक्षरवर्धितै:।
   पादैरुक्थादिसंज्ञ: स्याच्छन्द: षड्विंशतिर्मतम्॥ छ० मं०
4. गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च।
   त्रिष्टुप् च जगती चैव तथातिजगतीमता॥
   शक्वरी सातिपूर्वा स्यादष्ट्यत्यष्टी तथा स्मृते।
   धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृति: प्रकृतिराकृति:॥
   विकृति: संकृतिश्चैव तथातिकृतिरुत्कृति:॥ छ० मं० 1/16-18
5. एकद्वित्रिचतुष्पादुक्तपादम्-छ० सू० 3/7
6. आद्यं चतुष्पाद्ऋषिभि: इति-छ० शा० 3/8
7. श्री मद्‌भगवद्गीता-10/35

छन्द का परिमाण चौबीस अक्षर था। इसकी पूर्ति तीन गायत्री (3 × 8) पादों से, अथवा दो जागत (2 × 12) पादों से अथवा चार षडक्षर पादों से की जा सकती थी[1], इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता था। परवर्ती काल में पादों की संख्या निश्चित हो गयी। इसके साथ ही पाद का आकार भी निश्चित हो गया। पाद का आकार उस छन्द के आकार (कुल अक्षर संख्या) का चतुर्थ भाग निश्चित माना गया और चार पादों का एक छन्द माना गया। इस तरह सभी छन्द चतुष्पाद बन गये। वैदिकोत्तर काल में प्रयुक्त छन्द चतुष्पाद ही मिलते हैं। धीरे-धीरे छन्दोबद्धता पद्यात्मकता और चतुष्पदी के रूप में लक्षित हुई।

छन्दः परिमाण—वैदिक काल में छन्दः परिमाण सुनिश्चित नहीं था। कभी-कभी नियत परिमाण से एक या दो अक्षर कम या अधिक अथवा इससे भी कम या[2] अधिक रहने पर भी गायत्री आदि छन्दोऽभिधान मिलता है। इसी प्रकार का क्रम उष्णिक् अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्दों में भी उपलब्ध है। छन्दःशास्त्र में इस संशय को दूर करने के लिए दिशा निर्देश अवश्य किया गया है[3] किन्तु विनियोग वाक्यों में यह चरितार्थ नहीं है। परवर्ती काल में छन्दः परिमाण निश्चित हो गया और किसी भी छन्द के परिमाण में न्यूनाधिकत्व को दोष माना गया अथवा पादों की समता को अनिवार्य माना गया। इसके परिणाम स्वरूप सम, अर्द्धसम और विषम आदि छन्दः प्रभेद कल्पित हुए।

वैदिकोत्तरकाल में या काव्य-काल में छन्द को चतुष्पदी तथा समता या वर्तुलता के कारण 'वृत्त' नाम से अभिहित किया गया। अथवा वृत्त से तात्पर्य पादों की चतुरस्रता, वर्तुलता या पुनरावृत्ति से है—**'वर्तते इति वृत्तम्'**[4] इसी प्रकार पादों का योग होने से पद्य कहलाया[5] तथा छन्द-वृत्त-पद्य आदि शब्द एक ही तत्त्व के वाचक बन गये लेकिन वैदिक काल में छन्दः परिमाण इतना परिनिष्ठित नहीं था कि इन्हें पद्य अथवा वृत्त माना जा सके।

छन्दस्तत्त्व—छन्द को वेद का पाँव माना गया है—**''छन्दः पादौ तु वेदस्य''** ।[6] जिस प्रकार पदविहीन व्यक्ति गतिविहीन हो जाता है उसी प्रकार छन्दों के विना वेदों का अस्तित्व

---

1. ''गायत्री सा चतुर्विंशत्यक्षरा।
   अष्टाक्षरास्त्रयः पादाश्चत्वारो वा षडक्षरा ॥''—शौनक ऋक्प्राति. 16/1/16
2. (7 × 3) = 21 अक्षरों का पादनिचृत्, (6 + 8 + 7) =21 अक्षरों का अतिपाद निचृत्, (9 + 9 + 6) = 24 अक्षरों का नागी गायत्री, 6 + 9 + 9 = 24 अक्षरों का वाराही गायत्री, 6 + 7 + 8 = 21 अक्षरों का वर्धमाना गायत्री, 8 + 7 + 6 = 21 अक्षरों का प्रतिष्ठा गायत्री, (12 + 12) = 24 अक्षरों का जागत गायत्री (11 × 3) = 33 अक्षरों का विराड् गायत्री। पादनिचृत् से लेकर विराड् पर्यन्त गायत्री के प्रकारों का विवेचन गायत्री के बहुमुखीविकास एवं अनिश्चित परिमाण का संकेत करता है।
3. आदितः सन्दिग्धे – छ० सू० 3/61
   देवतादितश्च – छ० सू० 3/62
4. 'गायत्र्यादौ छन्दसि वर्तते' इति वृत्तम्—छ० शा०।
5. 'पादेन संयोगात् पद्यम्—छ० शा० संजीवनी—हलायुध छ० शा० पृ० 199
6. पाणिनीयशिक्षा—41—42

संकटग्रस्त हो जाता है। छन्दःशास्त्रीयों ने पाद का परिमाण इतना दीर्घ कहा है कि जितना एक गति में पढ़ा जा सके– **'यत्यन्तं पादः'**। यति से तात्पर्य है– 'विश्राम'। अर्थात् गति के विपरीत यति होती है, इसीलिये छन्दोविदों ने छन्दस्तत्त्व को प्राण के रूप में लक्षित करते हुए कहा है– **'प्राणा वै छन्दांसि'**।[1] अतः छन्दस्तत्त्व वैदिक मन्त्रों में स्वर तथा गति रूप में विद्यमान रहने वाला प्राण तत्त्व है। अथवा इसमें पादव्यवस्था उपलब्ध रहने के कारण इसे वेद का पाँव कहना भी समीचीन ही है।

वैदिक सप्त छन्दोवाद–छन्दः शास्त्रकारों ने चार-चार अक्षरों (या प्रतिचरण एक अक्षर) की वृद्धि से उत्तरोत्तर छन्दोविधान की दिशा प्रदर्शित की है,[2] किन्तु वैदिक छन्दोविधान में सप्त छन्दोवाद[3] ही वैज्ञानिक तथ्य है। अन्य छन्दों को अतिछन्द[4] कहा गया है। अतिछन्दों का निरूपण करते हुए भी इनमें पादों की संख्या नही बतायी गयी है। यदि कात्यायन द्वारा प्रदत्त पाद-व्यवस्था देखी जाय तो उपर्युक्त की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त छन्दः सूत्र में सात छन्दों के सात देवताओं, सात ऋषियों तथा सात वर्णों का उल्लेख भी वैदिक सप्त छन्दोवाद को प्रमाणित करता है।

वैदिक छन्दोविधान की विशेषताएँ–वैदिक छन्दोविधान में अक्षर और पाद की विशेष भूमिका पायी जाती है। छन्दों में अक्षर-संख्या महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। अक्षर से केवल स्वरवर्ण गृहीत होते हैं। किन्तु व्यञ्जन वर्णों का महत्त्व स्वरवर्ण से कम नहीं। अर्थ विशेष का बोध व्यञ्जन वर्ण से ही होता है। सभी व्यञ्जन वर्णों के मूल में स्वर वर्ण अन्तर्निहित होते हैं। तात्पर्य यह है कि सभी व्यञ्जन वर्ण स्वर पर निर्भर हैं।[5] इसलिए छन्द में केवल स्वर वर्ण ही गिने जाते हैं। क्योंकि स्वरों को ही ह्रस्व-दीर्घ आदि आकार अथवा उदात्त-अनुदात्त-स्वरित आदि उच्चारण-प्रक्रियाओं से सम्बन्ध हैं। यद्यपि छन्दोविधान की दृष्टि से स्वर की आकृति-प्रकृति का महत्त्व नहीं देखा जाता है, किन्तु छन्द का प्राण-मात्रा का ज्ञापक होने के कारण तथा प्राण का अक्षर-परिमाण का विधायक होने के कारण अक्षर की संख्या के अतिरिक्त इसकी आकृति-प्रकृति का महत्त्व भी अवश्य स्वीकार किया जाता

---

1. कौषीतकि ब्राह्मण 7/9, 11/8, 17/2
2. आरभ्यैकाक्षरात् पादादेकैकाक्षरवर्धितैः। छ० मं० 1/15
3. गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती च प्रजापतेः।
   पंक्ति-त्रिष्टुप् जगती च सप्त छन्दांसि तानि ह॥" इति शौनक ऋक् प्रातिशा० 16/1
4. (क) प्रथमातिजगत्यासां सा द्विपञ्चाशदक्षरा।
   षट्पञ्चाशत्तु शक्वरी षष्टिरेवातिशक्वरी॥
   उत्तराष्टिश्चतुःषष्टिः ततोऽष्ट्याषष्टिरित्यष्टिः॥
   धृतिः पूर्वा द्विसप्ततिः षट्सप्ततिस्त्वतिधृतिः॥ ऋ० प्रा० 17/18
   (ख) अशीतिश्चतुरशीतिरष्टाशीतिर्द्विनवतिः।
   षण्णवतिः शतं पूर्णमुत्तमा तु चतुः शतम्॥ ऋ० प्रा० 17/12
5. "परेण स्वरेण व्यज्यत" इति व्यञ्जनम्। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य-1/6 वैदिकामल भाष्य में उद्धृत

है। आचार्य पाणिनि ने कतिपय स्वरों का अष्टादश भेद कल्पित किये हैं,[1] जो निश्चित रूप से छन्दोविधान में स्वीकार्य हैं, अन्यथा वैदिक छन्दों का वेदत्व नहीं रह जायगा। यह पृथक् तथ्य है कि वैदिक छन्दों में अक्षर-संख्या ही मुख्य घटक होती है–24 अक्षरों का गायत्री, 28 अक्षरों का उष्णिक्, 32 अक्षरों का अनुष्टुप्, 36 अक्षरों का बृहती, 40 अक्षरों का पङ्क्ति, 44 अक्षरों का त्रिष्टुप् और 48 अक्षरों का जगती छन्द होता है। इसी प्रकार चार-चार अक्षर बढ़ाकर अतिजगती आदि चौदह अतिरिक्त छन्द होते हैं, इस तरह वैदिक छन्द केवल अक्षर-गणना पर निर्भर रहते हैं उनमें वर्णिक गणों या तत्तत् अक्षर के गुरु-लघु होने का कोई विशेष नियम नहीं रहता है। किसी भी मन्त्र के किसी एक पाद में यदि आठ अक्षर होते थे तो सभी के सभी अक्षर ह्रस्व या दीर्घ हो सकते थे। इसलिए वैदिक छन्दो-विधान में अक्षर-संख्या ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ पादों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, किन्तु इसे मुख्य घटक नहीं माना गया है। पादों की संख्या से सम्बन्धित कठोर नियम नही होने से छन्दों में यह आवश्यक नहीं माना गया कि किस छन्द में कितने पाद हों और किस आकार-प्रकार के हों। अतः जिस किसी भी आकार-प्रकार के पादों के योग से छन्दः परिमाण की पूर्त्ति हो, उनका प्रयोग किया जाता रहा, तथापि छन्दोऽध्ययन (वेदमन्त्रोच्चारण या स्वाध्याय) के समय पादों का ही उच्चारण होने से इसका महत्त्व अक्षर की अपेक्षा अधिक ही प्रतीत होता है। क्योंकि, पाद-व्यवस्था के विना यति-गति का सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता और तब मन्त्रों का विस्तार भी नहीं जाना जा सकता है। अतः छन्द में पाद-व्यवस्था का अभाव नहीं माना जा सकता है। लेकिन छन्दोविधान की अपनी पद्धति है, जिसकी कुछ खास विशेषताएँ है जो निम्नलिखित हैं–

अक्षर-नियम का अभाव–वैदिक छन्दोविधान में अक्षर-नियम का प्रायः अभाव पाया जाता है। इसके फलस्वरूप भावों के विस्तार पर अंकुश नहीं लगता है। यदि यह किसी छन्दः परिमाण से न्यूनाधिक परिमाण (विस्तार) का भी हो जाता है तो छन्दो दोष नहीं माना जाता तथा अक्षर-संख्या की आवश्यकतानुसार कमी या वृद्धि कर छन्दोविधान सरल होता है। गायत्री आदि के विराट् स्वराट्, निचृत्, भूरिक् आदि भेद उपर्युक्त कथन के प्रमाण हैं।[2] विराट् नाम के गायत्री छन्द में पच्चीस या छब्बीस अक्षर हो सकते हैं[3] तो

1. ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदेन त्रिधा पुनः उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात्।
सानुनासिकनिरनुनासिक भेदाच्च–अष्टादशभेदाः भवन्ति॥ सि० कौ०

2. (क) सापाद् निचृत्–छ० सू० 3/10
(ख) ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ–छ० सू० 3/59
(ग) द्वाभ्यां विराट् स्वराजौ–छ० सू० 3/60
(अर्थात एक अक्षर कम हो उसे निचृत् एक अक्षर अधिक हो उसे भूरिक्, दो अक्षर कम हो उसे विराट् और दो अक्षर अधिक हो उसे स्वराट् कहते हैं। इसी तरह इससे भी कम या अधिक अक्षर रहने पर गायत्री के अनेक भेद-प्रभेद होते हैं।)

3. (क) क्वचित् त्रिपाद्ऋषिभिः–छ० सू० 3/9
(ख) तृतीयं द्विपाज्जागतगायत्र्याभ्याम् छ० सू० 3/16 विराड्गायत्री

निचृत् संज्ञक गायत्री में बीस से तेइस अक्षर हो सकते हैं। इसी तरह उष्णिक् आदि के भुरिक् प्रभृति-प्रभेद भी[1] अक्षर-नियम की कठोरता के विरूद्ध प्रमाण हैं। अक्षर-नियम की इस शिथिलता के कारण कभी-कभी वैदिक मंत्रों में छन्दों का निर्धारण एक दुष्कर कार्य हो जाता है। शौनक आदि वैदिक छन्दोविचारकों ने इस स्थिति में छन्दोनिर्धारण के 'अधिकार' आदि घटकों का उल्लेख किया है। यहाँ छन्दों के निर्धारण के क्रम में तीन तत्त्वों-प्रतिज्ञा (अधिकार या प्रकरण) वृत्त (भाव) और अक्षर को मुख्य आधार माना गया है। यदि कोई दो छन्दों के मध्य स्थित हो याने 26 अक्षर का हो तो इसे गायत्री के अन्तर्गत माना जाय अथवा उष्णिक् के अन्तर्गत तो इसका निर्धारण प्रकरण के आधार पर किया जाना चाहिए। यदि गायत्री के प्रकरण में हो तो गायत्री अथवा उष्णिक् के प्रकरण में पड़ता हो तो उष्णिक्। इसी प्रकार पाद का निर्धारण करते समय वृत्त (भाव या अर्थ) को आधार बनाना चाहिए। इस सम्बन्ध में शौनक ने अपने ऋग्वेद प्रातिशाख्य में दिशानिर्देश भी दिया है। **''प्रायोऽर्थो वृत्तमित्येते पादज्ञानस्य हेतवः''**[2] अर्थात् प्रायः (अधिकार), अर्थ (अन्वय) और वृत्त (गुरु-लघु भाव) ये पादों के निर्णय के हेतु हैं। पाद का ज्ञान इसी आधार पर होना चाहिए। जब ये प्रायः, अर्थ और वृत्त एक साथ आ जाय तो पहले को पहले और बाद को बाद में रखना चाहिए।

पाद-नियम का अभाव–वैदिक छन्दोविधान में पाद-नियम का प्रायः अभाव माना जाता है। इसके फलस्वरूप छन्दों में किसी भी छोटे-बड़े पाद का प्रयोग किया जा सकता था तथा इसकी संख्या भी नियत नहीं होती थी। फलस्वरूप भावानुसार पादों के आकार-प्रकार एवं संख्या में कमी अथवा वृद्धि की जा सकती थी। गायत्री छन्द में षडक्षर चार पाद[3] अथवा अष्टाक्षर तीन पाद अथवा द्वादशाक्षर दो पाद होने का उल्लेख इसके प्रमाण हैं। इसी प्रकार उष्णिक् आदि छन्दों में सप्ताक्षर चार पाद अथवा अष्टाक्षर दो एवं एक द्वादशाक्षर पाद हो सकते थे। पंक्ति छन्द में दशाक्षर चार पाद अथवा द्वादशाक्षर दो एवं अष्टाक्षर दो पाद अथवा अष्टाक्षर पांच पाद भी पाद-नियम की कठोरता के विरोधी प्रमाण हैं। पाद-नियम की इस शिथिलता के परिणामस्वरूप जहाँ पंक्ति (पाँच पादों वाला), गायत्री (तीन पादों वाला) आदि संज्ञाएँ ज्ञापक बन गयी, वही छन्दोविधान सरल प्रक्रिया सिद्ध हुई।

गुरु-लघु-नियम का अभाव–वैदिक छन्दोविधान में गुरु-लघु-नियम का अभाव पाया जाता है। अक्षर-संख्या ही छन्द में मुख्य घटक मानी जाती थी। अक्षरों का गुरु-लघु क्रम में विन्यास एक जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का यहाँ अभाव होने से वैदिक छन्दोविधान अत्यधिक सरल था।

---

1. 'सप्ताक्षरैः चतुर्भिः चतुष्पादृषिभिः–उष्णिक् का सामान्यलक्षण शौनक का ऋक् प्रातिशाख्य 16/1/32
2. शौनक ऋक्प्रातिशाख्य–17/2/25
3. आद्यं चतुष्पादृतुभिः–छ० सू० 3/8

छन्दोज्ञान की आवश्यकता

वैदिक वाङ्मय छन्दोमय है। यह स्वर्गादि का साधन भी है अतः इसका अध्ययन अनिवार्य है।[1] जिस व्यक्ति को वैदिक छन्दों का ज्ञान नहीं है, यदि वह दैवत ब्राह्मण ऋचा से यज्ञ कराता है अथवा अध्यापन कराता है तो वह स्थाणु होता है, गर्त में गिरता है वा पाप का भागी होता है।[2] इसलिए छन्दोज्ञान के विना वेदों का अध्ययन सही ढंग से करना असंभव माना गया है, क्योंकि छन्दोदोष से प्रत्यवाय (अनिष्ट) भी होता है।[3] अतः अन्य वेदाङ्गों की तरह छन्दःशास्त्र का अध्ययन भी अनिवार्य प्रतीत होता है। वैदिक छन्दोज्ञान के उद्देश्य से प्राचीन काल से ही छन्दः शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा है जिसके प्रमाण पिङ्गल छन्दः सूत्र में उल्लिखित आचार्यों के नाम एवं मत हैं।[4] लेकिन पाणिनि की अष्टाध्यायी की तरह छन्दः शास्त्र का एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ पिङ्गलमुनि का 'छन्दः सूत्र' ही विद्यमान है। इसके द्वारा वैदिक छन्दों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना सरल हो जाता है। यह छन्दोविषयक प्रामाणिक ग्रन्थ है फिर भी वैदिक छन्दोविधान की सरल प्रक्रिया के कारण वैदिक मन्त्रों के छन्दों का निर्धारण करने में कई तरह से कठिनाई होती है और अन्ततः प्रामाण्यवाद (ब्राह्मण या कर्मकाण्ड विषयक ग्रन्थों में विनियोग) पर निर्भर करना पड़ता है। अतः यह यदि कहा जाय कि पिङ्गलादि प्रणीत छन्दःशास्त्र 'छन्दोऽनुशासन' मात्र है तो अनुचित न होगा। इसके द्वारा वैदिक मन्त्रों में छन्दों के निर्धारण में वास्तविक सहायता नहीं मिलती, किन्तु इससे छन्दों के लक्षण आदि का ज्ञान अवश्य होता है। इस तरह मन्त्रों में विनियुक्त छन्द का प्रामाणिक ज्ञान जहाँ विनियोग वाक्यों से होता है, वहीं छन्दोगायन छन्दः शास्त्रीय पद्धति से संभव हो पाता है। वस्तुतः वैदिक छन्दोविधान एक रूढ़ प्रक्रिया है जो वैदिक वाङ्मय तक ही सीमित है। कोई भी परिवर्ती छन्दोविद् अपने छन्दोज्ञान के आधार पर न तो वैदिक मन्त्रों की रचना कर सकता है और न ही इसमें छन्दों का निर्धारण। इस प्रकार वैदिक छन्दःशास्त्र उत्पादक नहीं माना जा सकता है। यही कारण है कि परवर्तीकाल में छन्दोविषयक नूतन अवधारणा उद्बुद्ध हुई और छन्दोविधान की नयी प्रक्रिया अपनायी गयी। इसे लौकिक (व्यावहारिक) विधान माना गया।

संस्कृतवृत्तों की उत्पत्ति

संस्कृतवृत्तों की उत्पत्ति वैदिक छन्दों से मानी जाती है। वैदिक छन्दोविधान में मात्र अक्षरों की गणना की जाती है। इन छन्दों के निर्माण में मात्रा एवं गण का महत्त्व नहीं है।

---

1. आर्ष छन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च/वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः ।। छ० शा०
2. स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पद्यति प्र वा मीयते पापीयान् भवति। का० 1-1
3. अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च/योऽध्यापयेत् वदेद्वापि पापीयान् जायते तु सः ।। छ० शा०
4. (क) स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुके–छ० सू० 3/31
   (ख) उरो बृहती यास्कस्य–छ० सू० 3/30
   (ग) 'सतो बृहती ताण्डिनः–छ० सू० 3/36
   (घ) 'सर्वतः सैतवस्य'–छ० सू० 5/19
   (ङ) 'सिंहोन्नता काश्यपस्य'–छ० सू० 7/9
   (च) 'अन्यत्र रातमाण्डव्याभ्याम्–छ० सू० 7/35

किन्तु संस्कृत-वृत्तविधान में पादों की चतुर्धावृत्ति निश्चित होती है, साथ ही अक्षरों का विन्यास भी नियत लघु-गुरु के क्रम-विनियोग-प्रक्रिया पर आधारित होता है। इस प्रकार छन्दों की कतिपय विशेषताओं को देखते हुए मनीषियों ने संस्कृत वृत्त-विधान की नूतन प्रक्रिया विकसित की तथा संस्कृतवृत्तों का प्रयोग आरंभ हुआ।[1] छन्द की प्रमुख विशेषताएँ हैं–छन्द की मनोहारिता, भाषा एवं भाव-संरक्षण की क्षमता आदि। इन्हीं कारणों से कवियों तथा शास्त्रकारों ने संस्कृत-वृत्त-विधान की प्रक्रिया अपनायी तथा इसे पुष्पित एवं पल्लवित किया। इन मनीषियों के समक्ष वे वैदिक मन्त्र या छन्द ही आदर्शभूत थे जिनका अनुसरण करते हुए उन्होंने वृत्तों का दोहन किया। छन्द में पाद-व्यवस्था अवश्य थी, किन्तु उसकी नियत आवृत्ति अनिवार्य नहीं थी। संस्कृत-वृत्तों में पाद की आवृत्ति को अनिवार्य माना गया तथा पादों की संख्या एवं आकार-प्रकार भी निश्चित किया गया,[2] खास-खास छन्दः पादकी विशेषता एवं आकृति-प्रकृति को परख कर चतुर्धा आवृत्ति द्वारा संस्कृत वृत्तों की रचना की जाने लगी। यहाँ थोड़े से लघु-गुरु मात्रा के हेर-फेर से नियताक्षरों के विनियोग से अनेकों वृत्त विकसित हुए। बाद में इसकी शास्त्रीय प्रक्रिया भी खोज निकाली गयी। इस तरह वैदिक छन्दों में संस्कृतवृत्तों के बीज का अन्वेषण किया गया तथा अनुशीलन के क्रम में यह देखा गया कि लौकिक संस्कृत-वृत्तों में जो विभिन्न गणों में नियत गुरु-लघु वर्णों के विन्यास के नियम मिलते हैं, उनका बीज वस्तुतः वेदों की विभिन्न ऋचाओं में उपलब्ध है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित स्थल उल्लेखनीय है–

1. गायत्री–'हृदिस्पृगस्तु शन्तमः'[3] की इस ऋचा में 'प्रमाणिका' वृत्त का बीज है इसका आकार अष्टाक्षर है तथा इसमें लघु-गुरु के क्रम में अक्षर का विन्यास है। इसकी चतुर्धावृति से प्रमाणिका वृत्त की रचना होती है। वृत्तज्ञों ने प्रमाणिका का लक्षण–**''प्रमाणिका जरौ लगौ''**[4] किया है। यदि गणों में प्रस्तुत लक्षण का विस्तार किया जाय तो इस लक्षण का स्वरूप होगा– ज र लग ।S।S।S।S यानि ल-ग क्रम में विन्यस्त अष्टाक्षर पाद-प्रमाण। उपर्युक्त ऋचा में यदि मात्रा-विन्यास किया जाय तो प्रमाणिका पाद के अनुरूप होगा। अतः प्रमाणिका वृत्त का विकास उपर्युक्त अथवा तादृश छन्दः पाद से हुआ मानना समीचीन ही है।

---

1. (क) 'छन्दसि वर्तते इति वृत्तम्'–संजीवनी पृ० 199
   (ख) 'छन्दोयुक्तं समासेन निबद्धं वृत्तमिष्यते' ना० शा० 14/39 पूर्वार्द्ध
2. निबद्धाक्षरसंयुक्तं पदच्छेदसमन्वितम्।
   निबद्धं तु पदं ज्ञेयं प्रमाणनियताक्षरम्॥
   एवं नानार्थसंयुक्तै : पदैर्वर्णविभूषितैः।
   चतुर्भिस्तु भवेद्वृत्तं छन्दोवृत्ताभिधानवत्॥ ना० शा० 14/36-37
3. ऋग्वेद–1-1-31
4. छन्दोमञ्जरी–पृ० 27

2. त्रिष्टुप्–"पृषण्वते ते चकृमा करम्भम्"[1] इस ऋचा में 'उपेन्द्रवज्रा' वृत्त का बीज विद्यमान है। इसका आकार एकादशाक्षर है तथा इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और अन्त में दो गुरु (ऽऽ) वर्ण हैं। यदि उपर्युक्त ऋचा में मात्रा-विन्यास कर गणों का अनुसन्धान किया जाय तो यह पूर्वोक्त सदृश होगा। अतः उपर्युक्त ऋचा या तादृश अन्य ऋचा में उपेन्द्रवज्रा का बीज विद्यमान है, यह कहा जा सकता है। उपेन्द्रवज्रा का लक्षण वृत्तज्ञों ने इस प्रकार दिया है–**"उपेन्द्रवज्राः जतजास्ततो गौ"**[2] इस तरह उपेन्द्रवज्रा एक एकादशाक्षर वृत्त है। इसी प्रकार–**'आ देवानामभवः केतरग्ने'**[3] इस ऋचा में वातोर्मि वृत्त का बीज विद्यमान माना गया है इसका भी आकार एकादशाक्षर प्रतिपाद होता है। इसका लक्षण–**'वातोर्मीयं गदिता म्भौ तगौ गः**।'[4] इसके अतिरिक्त–**'इन्द्रा सोमा दुष्कृतं मा सुगम्भूत्'**। इस ऋचा में शालिनी वृत्त विद्यमान कहा जा सकता है। शालिनी वृत्त का लक्षण है–**मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः**।[5] इसका आकार भी प्रतिपाद एकादशाक्षर है। यदि उपर्युक्त ऋचा में मात्रा-विन्यास कर गणों का अनुसन्धान किया जाय तो यह शालिनी लक्षण के अनुरूप होगा। अतः एतादृश ऋचा में शालिनी वृत्त का बीज सुरक्षित माना जा सकता है।

3. जगती–'रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवः।'[6] इस ऋचा में वंशस्थ वृत्त का बीज विद्यमान है। इसका आकार प्रतिपाद बारह अक्षर होता है। वंशस्थ का लक्षण है–

"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ"[7]

उपर्युक्त ऋचा में यह लक्षण स्पष्टतः घटित होता है। इसी प्रकार–**'यूना हसन्ता प्रथमं विजज्ञतुः**।' इस ऋचा में इन्द्रवंशा का बीज विद्यमान है। इसका आकार भी बारह अक्षर प्रतिपाद होता है। इन्द्रवंशा का लक्षण है–**'स्यादिन्द्रवंशा ततजैरसंयुतैः'**।[8] इस ऋचा में यह लक्षण सुघटित है। अतः यह इन्द्रवंशा का बीज है यह मानने में आपत्ति नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीन प्रकार के छन्दः पादों में कतिपय संस्कृतवृत्तों के बीज पाये जाने से यह स्पष्ट है कि संस्कृतवृत्तों की उत्पत्ति वैदिक छन्दों से हुई। वैदिक छन्द जहाँ परिमाण या आकृति प्रधान थे वहीं संस्कृतवृत्त आवृत्ति प्रधान माना गया तथा **'वृत्त'** नाम से अभिहित हुआ। साथ ही गायत्री आदि छन्द संस्कृत-वृत्त-विधान में गायत्री आदि छन्दः पाद के भी वाचक हुए तथा संस्कृतवृत्तों का निरूपण गायत्री आदि अधिकरणों में किया जाने लगा।

---

1. ऋग्वेद–3-3-18
2. वृत्तरत्नाकर–3/31
3. ऋग्वेद–2/8/16
4. छन्दोमञ्जरी–पृ०–39
5. छन्दोमञ्जरी–पृ०–38
6. ऋग्वेद–1/7/24
7. वृत्तरत्नाकर–3/47
8. वृत्तरत्नाकर–3/48

संस्कृत-वृत्त-विधान का आरंभ

गायत्री आदि अष्टाक्षर पादों की आवृत्ति द्वारा वृत्तों (छन्दों) की रचना वेदोत्तर काल में ही आरंभ हो चुकी थी। ब्राह्मण-आरण्यक ग्रन्थों में भी सम चतुष्पाद वृत्तों (छन्दों) के प्रयोग प्राप्त होते हैं। उपनिषद् काल में तो अनुष्टुप् (अष्टाक्षर समचतुष्पाद) त्रिष्टुप् (एकादशाक्षर समचतुष्पाद) तथा जगती (द्वादशाक्षर समचतुष्पाद) वृत्तों का प्रचुर प्रयोग मिलता है।[1] वैदिक साहित्य में उपलभ्यमान ये समचतुष्पाद छन्द ही संस्कृत-वृत्त विधान के आदर्शभूत रहे हैं। वस्तुतः वहाँ छन्दः पादों की चतुर्धावृत्ति है, न, कि लघु-गुरु अक्षरगण-विन्यास रूप वृत्तविधान। परवर्ती काल में इन्हीं वृत्ताकार छन्दों को आदर्श मानकर संस्कृत-वृत्त-विधान प्रारंभ हुआ। वेदोत्तर या वेदान्त साहित्य में प्रयुज्यमान छन्दःपादों में गायत्री, विराज्, त्रिष्टुप् और जगती प्रमुख हैं। अतः वेदान्त-साहित्य में अष्टाक्षर, दशाक्षर, एकादशाक्षर और द्वादशाक्षर समचतुष्पाद छन्द पाये जाते हैं। जिनका संस्कृतवृत्तों से अध्यधिक साम्य प्रतीत होता है। यहाँ आते-आते छन्द और वृत्त में बहुत थोड़ा अन्तर पाया जाता है। छन्दों में चारों पाद लगभग समान होने पर भी इनमें अक्षर-विन्यास लघु-गुरु के नियत क्रम में नहीं होता, जब कि वृत्तों में लघु-गुरु क्रम में अक्षर-विन्यास का नियम मिलता है। प्रत्येक पाद समान आकार का रहने पर भी यदि गुरु-लघु क्रम में भिन्न हो तो संस्कृत-वृत्तविधान में यह उपजाति या वृत्त-संकर माना जाता है, और आकार-भेद होने से अर्द्धसम-विषम आदि। इस तरह वेदान्तकाल ही संस्कृत-वृत्त-विधान की पृष्ठभूमि माना जा सकता है। वेदान्तसाहित्य में कुछ अपवादों को छोड़कर समचतुष्पाद छन्द का प्रयोग पाया जाता है जिससे वृत्तों को समचतुष्पाद मानने का सिद्धान्त अपनाया गया प्रतीत होता है। वेदान्तसाहित्य में प्रयुक्त छन्द वैदिक मन्त्रों से अधिक कोमल तथा हृदयग्राही होने पर भी उदात्त-अनुदात्त आदि वैदिक स्वर-तरङ्गों से पूर्णतः मुक्त नहीं थे। इसका मुख्य कारण इनके पादों में चतुरस्रता (समता या वर्तुलता) का अभाव था। संस्कृतवृत्तों में गुरु-लघु-क्रम में अक्षर-विन्यास द्वारा यह समता व्यवस्थित कर ली गयी जिसके फलस्वरूप ये वृत्त सरल और धारावाही बन गये। इसमें समरसता आ गयी और परवर्ती काल में इनका प्रचुर प्रयोग हुआ। पुराणों में प्रयुक्त छन्दों में वृत्त के लक्षण अधिक स्पष्ट हैं। फिर भी इन्हें

---

1. समचतुष्पाद अनुष्टुप्–
   ईशावास्यमिदं सर्वं
   यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
   तेन त्यक्तेन भुंजीथा
   मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥–ईशावास्योपनिषद्

   एकादशाक्षर समचतुष्पाद–
   काली कराली च मनोजवा च
   सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
   स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी
   लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः॥ मुण्डकोपनिषद्

   द्वादशाक्षर समचतुष्पाद–
   युंजते मन उत युंजते धियो
   विप्रा विप्रस्य वृहतो विपश्चितः।
   वि होत्रा दधे वयुना विदेक इन्–
   मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥–यजुर्वेद/श्वेताश्वतरः–11.4-2.4

वृत्त-वाङ्मय नहीं माना जा सकता, क्योंकि यदि किसी खास छन्दः पाद की यथावत् चतुर्धावृत्ति होती है, तब भी वह छन्द ही होता है, भ्रमवश वहाँ लघु-गुरु में वर्ण-विन्यास मानकर वृत्त की कल्पना ठीक नहीं है। पुराणकाल में यदि वृत्त-विषयक अवधारणा होती तो पुराण-साहित्य में इसका पूर्णतः पालन किया जाता, किन्तु यहाँ वैदिक छन्दोविधान ही अपनाया गया प्रतीत होता है। एक ही वाङ्मय में कहीं वैदिक और कहीं संस्कृत (लौकिक) वृत्त-विधान मानना उचित नहीं है, अतः पुराणों को छान्दस मानना ही समीचीन है। किन्तु संस्कृत-वृत्तों के विकास में पौराणिक छन्दोविधान का विशेष योगदान है, इसमें सन्देह नहीं। पुराणों में प्रयुक्त छन्द अधिक चतुरस्र, कोमल और हृदयग्राही है। यहाँ 13, 14, 15, 17, 18, 21 अक्षर प्रतिपाद छन्दों का प्रयोग भी अतिमनोहारी है।

संस्कृत-वृत्तों का विकास

पूर्वोक्त छन्दोविषयक अनुशीलन से यह स्पष्ट हो चुका है कि कुछ—एक संस्कृत-वृत्त का बीज वैदिक मन्त्रों में विद्यमान था। ये वृत्त छोटे आकार के थे। संस्कृत-वृत्त के आदर्शभूत छान्दस साहित्य-वेदान्त एवं पुराण—में इन्हीं छोटे-छोटे छन्दों का प्रयोग-बाहुल्य है। अनुष्टुप् (8×4), त्रिष्टुप् (11×4) और जगती (12×4) छन्दों का ही छान्दस-साहित्य में साम्राज्य है। इसकी पुष्टि छान्दसवाङ्मय के अवलोकन से होती है। पुराण-साहित्य में कुछ अति-छन्दों का प्रयोग अवश्य मिलता है, किन्तु इनकी मात्रा अत्यल्प ही है। संस्कृत-साहित्य के आरंभ में वृत्तों की संख्या –7–8– से अधिक नहीं थी, किन्तु धीरे-धीरे यह संख्या बढ़ती गयी और अधुना यह संख्या हजार से अधिक है। संस्कृत-वृत्तों का विकास दो रूपों में मिलता है—**मात्रावृत्त** और **वर्णवृत्त**। मात्रावृत्तों में मात्रा मुख्य घटक मानी जाती है। यहाँ लघु-गुरु मात्राओं की संख्या तथा चार-चार लघु मात्राओं को गण बनाकर इसकी गणना की जाती है किन्तु वर्णवृत्तों में लघु-गुरु वर्णों को क्रम में निश्चित संख्या में नियमित किया जाता है। मात्रावृत्तों को विशुद्ध लौकिक वृत्त माना जाता है तो वर्णवृत्तों को छन्दः संस्कार सम्पन्न होने के कारण छान्दस या छन्दों के समकक्ष। मात्रावृत्तों को जाति भी कहा गया है। इस प्रकार संस्कृत-वृत्त के दो प्रकार पाये जाते हैं—**जाति** और **वृत्त**।[1] संस्कृत-साहित्य में इन दोनों प्रकारों के वृत्तों का प्रयोग पाया जाता है। निश्चय ही मात्रावृत्तों का विकास परवर्ती काल में हुआ है। यदि संस्कृत-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो मात्रावृत्त प्राकृत-साहित्य में प्रयोज्य प्रतीत होता है, किन्तु परवर्तीकाल में इसका प्रयोग संस्कृत-साहित्य में भी होने लगा। पिङ्गलमुनि ने इन दोनों प्रकार के वृत्तों के निरूपणार्थ 'छन्दःसूत्र' और 'प्राकृत-पैङ्गल' इन दोनों ग्रन्थों का पृथक् प्रणयन किया। 'छन्दःसूत्र' में लौकिक अधिकार के अन्तर्गत प्रथम मात्रावृत्तों का अनुशीलन यह संकेतित करता है कि मात्रावृत्त भी लौकिक संस्कृत में प्रयोज्य है, किन्तु संस्कृत-वर्ण-वृत्त प्राकृत

1. (क) पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिर्मात्राकृता भवेत्॥ छन्दोमञ्जरी 1/4
(ख) अक्षरैर्गणना यत्र तद् वृत्तमिति कथ्यते।
मात्राभिर्गणना यत्र सा जातिरभिधीयते॥ वृत्तमञ्जरी

साहित्य में प्रयोज्य नहीं है। यही कारण है कि प्रारंभिक संस्कृत-साहित्य में मात्रावृत्तों का प्रयोग नहीं मिलता है। मात्रागणवृत्तों पर वर्णवृत्त के गणविषयक अवधारणा का प्रभाव भी यह प्रमाणित करता है कि मात्रावृत्तों का विकास वर्णवृत्तों के अनन्तर हुआ है। परवर्ती काल में संस्कृत-साहित्य में खासकर नाट्य साहित्य में मात्रावृत्तों का प्रयोग पाया जाता है। बाद के कालिदास-भारवि-माघ-श्रीहर्ष के काव्य-प्रबन्धों में भी मात्रावृत्तों का प्रयोग मिलता है। अतएव वृत्तज्ञों ने छन्दोविषयक ग्रन्थों में एक साथ दोनों प्रकार के वृत्तों का निरूपण किया है इससे वृत्तों के सर्वाङ्गीण अध्ययन का अवसर प्राप्त होता है।

वृत्त-विकास की शास्त्रीय प्रक्रिया

छन्दोविषयक प्रामाणिक ग्रन्थों के रूप में पिङ्गल प्रणीत 'छन्दःसूत्र' का प्रथम उल्लेख इसकी महत्ता का संकेत करता है। इसका योगदान वृत्त-विकास के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय कहा जा सकता है। यहाँ प्रतिपाद एक अक्षर या प्रतिच्छन्द चार अक्षर बढ़ाकर बादवाले छन्दोविधान की साधारण प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है। इस प्रक्रियानुसार एक से छब्बीस अक्षर (प्रतिपाद) छन्दों का निरूपण किया गया है। इनमें से एक अक्षर से लेकर पाँच अक्षर तक के पाँच छन्द शास्त्रीय महत्त्व के हैं। ये अत्यन्त लघु होने के कारण व्यवहार्य नहीं प्रतीत होते हैं। इनको छोड़कर शेष छः से लेकर बारह, तेरह से उन्नीस और बीस से छब्बीस अक्षर के छन्दों के तीन वर्ग किये गये हैं—प्रथम वर्ग में गायत्री आदि सात मौलिक छन्द छोटे आकार के हैं।[1] दूसरे वर्ग में अतिजगती आदि मध्यम आकार वाले सात छन्द हैं[2] तथा तीसरे वर्ग में कृति आकार वाले सात छन्द हैं।[3] इस तरह कुल इक्कीस छन्द हैं। वृत्त-विशेषज्ञों ने वृत्त-विकास की शास्त्रीय प्रक्रिया की खोज की और प्रत्येक छन्द से वृत्तविकल्पों का पल्लवन किया। इस प्रक्रिया को छन्द या वृत्त-प्रस्तार-विधि के नाम से जाना जाता है। इस विधि से गायत्री प्रभृति (षडक्षरादि) छन्दों के अधिकतम विकल्प प्राप्त किया जाता है और उन विकल्पों को सजातीय (समान छन्द से निष्पन्न) माना जाता है। गायत्री छन्द के कुल चौंसठ भेद प्राप्त होते हैं।[4] इसी प्रकार उष्णिक् आदि छन्दः-प्रस्तार से प्राप्त वृत्तभेदों के योग तेरह करोड़ से भी अधिक होता है।[5] अतः वृत्त-विकास की इस प्रक्रिया के प्रकाश में आने से नये-नये वृत्तों का प्रयोग सरल हो गया। कवियों के लिए वर्णन एवं भाव-तरङ्गों के अनुरूप आकृति-प्रकृति वाले वृत्तों का चयन सरल हो गया और संस्कृतवृत्त में रचना होने लगी।[6]

---

1. 'तान्यनुष्टुब्-बृहती-पङ्क्ति-त्रिष्टुप्-जगत्यः-छन्दःसूत्र।
2. 'धृत्यष्टिशक्वरीजगत्यः-'छन्दःसूत्र-4/5
'द्वितीयं द्वितीयमतितः-छन्दःसूत्र-4/7
3. 'तान्यभि-सं-व्या-प्रेभ्यः कृतिः'-छन्दः सूत्र 4/3
4. 'वृत्तानां हि चतुःषष्ठिर्गायत्री परिकीर्त्तिता'। ना० शा० 14/60 उत्तरार्द्ध
5. सर्वेषां छन्दसां पिण्डं कोट्योऽत्र त्रयोदश।
शतानि सप्त सप्रैव सहस्राणि दशेवच।
तथा शतसहस्राणां द्विचत्वारिंशदत्र हि।। ना० शा० 14/80-81
6. काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्।। सुवृत्ततिलक

संस्कृतवृत्त-विनियोग की परम्परा

संस्कृत-वृत्तों के विनियोग की परम्परा का श्रीगणेश आदिकवि वाल्मीकि ने किया। स्वयं वाल्मीकि ने वृत्त का प्रथमतः प्रयोग करते हुए यह उद्घोष किया है कि उनका शोक क्रौञ्च-वध से उत्पन्न श्लोक के रूप में परिणत हुआ–**'शोकः श्लोकत्वमागतः'**। महाकवि कालिदास तथा भवभूति ने भी वृत्तों के आदि प्रयोक्ता के रूप में वाल्मीकि का नामोल्लेख किया है–**'श्लोकत्वामापद्यत यस्य शोकः'**[1] (रघुवंश) तथा **'नूतनश्छन्दसामवतारः'**।[2] इन उदहारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृतवृत्तों के आदि प्रयोक्ता महर्षि वाल्मीकि हैं। जिन्हें आदि कवि के रूप में जाना जाता है। आदिकवि की पहली कविता–**'मा निषाद'**[3] इत्यादि अनायास ही मुख से निःसृत हो गयी थी। फिर तो उन्होंने चौबीस हजार पद्यों में 'रामायण' महाकाव्य की रचना कर डाली। संस्कृत-साहित्य की यह पहली रचना है जो महाकाव्य के महनीय गुणों से मण्डित है। इसमें कवि ने कम-से-कम तेरह वृत्तों के प्रयोग किये हैं। इसमें मुख्य वृत्त अनुष्टुप् है। इसके अतिरिक्त ग्यारह से अट्ठारह अक्षर (प्रतिपाद) वाले अन्यान्य वृत्तों का प्रयोग यहाँ मिलता है। महर्षि वेदव्यास प्रणीत भारत या महाभारत संस्कृत-साहित्य की दूसरी रचना है जिसमें महाकाव्य के लक्षण घटित होते हैं। इसमें भी मुख्य वृत्त अनुष्टुप् ही है। इसके अतिरिक्त इसमें ग्यारह से अट्ठारह अक्षर (प्रतिपाद) प्रमाण वाले कम-से-कम अट्ठारह अन्यान्य वृत्तों का प्रयोग प्राप्त होता है। रामायण और महाभारत आर्ष काव्य हैं। इन दोनों में संस्कृतवृत्तों का प्रयोग अवश्य हुआ है, किन्तु ये वैदिक छन्दोविधान से पूर्णतः मुक्त नहीं है। कहीं-कहीं पादों का छोटा-बड़ा होना तो कहीं पादों की संख्या चार से अधिक होना आदि विसंगतियाँ पायी जाती हैं। जिसके फलस्वरूप इन वृत्तों की चतुरस्रता पूर्णतः नहीं बन पायी है। यदि इन वृत्तों का अनुशीलन किया जाय और गुरु-लघुक्रम की परीक्षा की जाय तो बहुत कम ही वृत्त शुद्ध रूप में प्रयुक्त मिलेंगे। पादों की संकीर्णता या उपजाति तो अधिकांश में पाया जाता है। इन काव्यों में मात्रावृत्त का सर्वथा अभाव है जिससे यह स्पष्ट है कि इस काल में मात्रावृत्त की अवधारणा नहीं पनपी थी। महाभारत काल के अनन्तर 'श्रीमद्भागवत' महापुराण में संस्कृतवृत्तों का प्रयोग पाया जाता है। इसमें लगभग पचीस वृत्त प्रयुक्त हुए हैं। 'शुकसंहिता'[4] भारतोत्तर काल की रचना है। इसमें संस्कृतवृत्तों का प्रयोग हुआ है, यह

---

1. 'निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्यशोकः'–रघु० 14/70
2. 'चित्रमाम्नायादन्योनूतनश्छन्दसामवतारः'–उत्तर रा० च० पृ० 164
3. 'आकस्मिकप्रत्यवभासां च देवीं वाचमत्यतिकीर्णवर्णा–
   मानुष्टुभेनछन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्–
   ''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
   यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ उत्तर० रा० च० 2/5
4. श्री मद्भागवतमहापुराण के प्रवक्ता शुकदेवजी माने जाते हैं, जिससे यह शुकसंहिता कहलाती है–
   'निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
   पिबतभागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥ (श्रीमद्भागवत महापुराण 1/1/3)

कहना असंगत नही होगा। यदि इसमें वृत्तों का प्रयोग नहीं होता तो रामायण और महाभारत की अपेक्षा इसमें अधिक वृत्त नहीं पाये जाते। इसमें भी अन्य पुराणों की तरह अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती और एकाध अन्य छन्दों का ही प्रयोग होता। अतः संस्कृतवृत्त-विनियोग-परम्परा में यह तीसरी रचना है, इसमें सन्देह नहीं है। श्रीमद्भागवत आर्षपरम्परा की अन्तिम रचना मानी जा सकती है। इसके परवर्ती काल में आर्षकविता-धारा विराम को प्राप्त कर गयी या इसकी जगह संस्कृत साहित्य ने ले लिया। महर्षि पाणिनि ने प्रथम संस्कृत महाकाव्य 'जाम्बवतीय' की रचना की।[1] दुर्भाग्यवश आज इस महाकाव्य के कुछ–एक पद्य ही प्राप्त हैं। पाणिनि के वृत्तिकार कात्यायन ने 'स्वर्गारोहण' महाकाव्य की रचना की। इसमें पाण्डवों के स्वर्णारोहण का वर्णन मुख्य कथानक अनुमित होता है। यह महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व को उपजीव्य बनाकर लिखा गया होगा; किन्तु यह महाकाव्य भी आज उपलब्ध नहीं है। इसके अनन्तर भाष्यकार पतञ्जलि ने 'कंसवध' नाटक की रचना की। इसमें कंस का वध नाटक का प्रतिपाद्य माना जा सकता है। यह नाटक भी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। ये तीनों रचनायें श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कथानक पर आधारित तथा 'हरिवंश' अथवा महाभारत को उपजीव्य बनाकर रचे गये प्रतीत होते हैं। पतञ्जलिके समानान्तर ही महाकवि कालिदास का आविर्भाव हुआ। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' तथा 'कुमारसंभव' महाकाव्यों एवं 'मेघदूत' खण्डकाव्य के अतिरिक्त तीन नाट्य काव्यों की रचना की। अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय ये तीन इनकी नाट्यकृतियाँ हैं। इनकी रचनाओं में संस्कृत-वृत्तों का विशुद्ध प्रयोग मिलता है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती नाटककारों में भास का नामोल्लेख किया है।[2] भास की तेरह नाट्यकृतियाँ इस समय उपलब्ध हैं। इनकी नाट्यकृतियों में छः अक्षर से छब्बीस या इससे भी अधिक सत्ताइस अक्षर (प्रतिपाद) प्रमाण वाले दण्डक[3] वृत्तों का प्रयोग मिलता है। इन नाटकों में आर्या आदि कतिपय मात्रावृत्तों का प्रयोग भी मिलता है। अतः पाणिनि-परवर्तीकाल में संस्कृतवृत्तों का प्रयोग शुद्ध एवं स्वतन्त्र रूप में होने लगा था, यह निष्कर्ष प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने छोटे-बड़े तथा मध्यम सभी आकार-प्रकार के वृत्तों का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त वृत्तों की संख्या पच्चीस के लगभग है। बृहत्त्रयी काव्यकारों में प्रथम महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य में कुल अट्ठाइस वृत्तों का प्रयोग किया है। महाकवि

---

1. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय–पृ० 34
   (ख) क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' छन्दोग्रन्थ में पाणिनि को उपजाति छन्द में विशेष सिद्धहस्त माना है–
   'स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः।
   चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव उपजातिभिः॥–सुवृत्ततिलक
2. "प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य
   कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः!–मालविकाग्निमित्र
3. 'चण्डवृष्टिप्रपात' वृत्त–अविमारक नाटक 1/6

माघ ने शिशुपालवध में चौआलीस वृत्तों का प्रयोग किया है तो श्रीहर्ष ने नैषध महाकाव्य में मात्र इक्कीस वृत्तों का प्रयोग किया है। परवर्ती काल में 'हरविजय' महाकाव्यकर्त्ता रत्नाकर आदि ने लगातार नये वृत्तों का प्रयोग किया है। संस्कृतसाहित्य की काव्य-माला गद्य-विधा को छोड़कर अन्य विधाओं में अनेकानेक वृत्त-पुष्पों से गुम्फित है। इसके फलस्वरूप शताधिक वृत्तों के उदाहरण संस्कृत-साहित्य में सहज ही मिल जाते हैं।

मात्रावृत्त-विनियोग की परम्परा

वर्णवृत्तों की तरह मात्रावृत्तों के प्रथम विनियोग-कर्त्ता का नामोल्लेख नहीं किया जा सकता। किन्तु भास आदि के नाटकों में मात्रावृत्तों का प्रयोग अवश्य मिलता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में आर्यावृत्त का प्रयोग पाया जाता है। वहाँ अनुष्टुप् (वृत्त) को श्लोक और आर्या (मात्रावृत्त) के लिए 'आर्या' शब्द प्रयुक्त हुआ है। पिङ्गलमुनि ने तो मात्रावृत्त का विस्तृत विवेचन किया है जिससे यह जान पड़ता है कि महाकाव्यकाल के समकाल ही नाट्यकृतियों में इसका गौण प्रयोग आरंभ हो चुका था। मात्रावृत्तों का मुख्य प्रयोग प्राकृत-साहित्य में मिलता है। 'गाथासप्तशती', सेतुबन्ध', 'गउडवहो' आदि प्राकृत-काव्यों में मात्रावृत्तों का विशुद्ध प्रयोग देखा जाता है। ग्यारहवीं शदी में गोवर्धन कवि ने 'आर्या सप्तशती' की रचना की जिसमें आर्या (मात्रावृत्त) का रुचिर प्रयोग हुआ है। स्वयं कवि ने अपने आर्या-प्रयोग की महिमा का वखान किया है। धीरे-धीरे प्राकृत का स्थान अपभ्रंश-साहित्य ने ले लिया और मात्रावृत्तों का प्रयोग अपभ्रंश-साहित्य में प्रचलित रहा।

संस्कृतवृत्त-अनुशीलन-परम्परा

वैदिक छन्दःशास्त्र वेदाङ्गविद्या की ऐक कड़ी है। छन्दःशास्त्र वेदाङ्ग के रूप में वैदिक मन्त्रों में छन्दोविवेचन का शास्त्र है। इसके प्रथम उपदेशक भगवान् शिव माने जाते हैं। शिव से सुरगुरु वृहस्पति तथा वृहस्पति से उनके देव शिष्य देवेन्द्र ने छन्दोज्ञान प्राप्त किया। फिर माण्डव्य-सैतव-यास्क और पिङ्गलमुनि ने गुरु परम्परया छन्दोज्ञान प्राप्त किया।[1] पिङ्गलमुनि के छन्दःसूत्र में इन ऋषियों के मत नामोल्लेख के साथ उद्धृत मिलते हैं।[2] देव-परम्परा का उल्लेख अन्य वेदाङ्गों की अवतारणा जैसी प्रतीत होती है। पिङ्गलमुनि के पूर्व वैदिक छन्दोविषयक अध्ययन प्रातिशाख्यों तथा वैदिक अनुक्रमणियों

1. छन्दोज्ञानमिदं भवाद् भगवतो लेभे सुराणां गुरु-
स्तस्माद् दुश्च्यवनस्ततोऽसुरगुरुर्माण्डव्यनामा ततः।
माण्डव्यादपि सैतवस्ततः ऋषिर्यास्कस्ततः पिङ्गल-
स्तस्येदं यशसा गुरोर्भुवि धृतं प्राप्यास्मदाद्यैः क्रमात्॥ छ० म० भूमिका पृ०-7

2. (क) 'अन्यत्र रातमाण्डव्याभ्याम्'-छ० सू० 7/35
(ख) 'सर्वतः सैतवस्य'-छ० सू० 5/19
(ग) 'उरोबृहती यास्कस्य'-छ० सू० 3/30

के माध्यम से होता था।[1] छन्द:शास्त्र-विषयक उपलब्ध अन्तिम और सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ छन्द:सूत्र ही है। इसमें वैदिक छन्दों के साथ-साथ संस्कृत-वृत्तों का निरूपण किया गया है। इस तरह पिङ्गल छन्द:सूत्र वैदिक छन्दोज्ञान हेतु अन्तिम ग्रन्थ है तो संस्कृत-वृत्त-निरूपण करने वाला आद्यग्रन्थ। पिङ्गलमुनि ने सर्वप्रथम संस्कृत-वृत्तों के उभय विध-मात्रा एवं वर्णविधान का विवेचन किया है। इस क्रम में पिङ्गलमुनि ने वैदिक छन्दों से प्रस्तारविधि द्वारा वृत्तांशों के उद्धार कर वैदिक छन्दोऽधिकार में वृत्त-लक्षण देकर यह स्पष्ट संकेत किया है कि वैदिक छन्दों से ही संस्कृत-वृत्तों का विकास हुआ है। वैदिक छन्दों से संस्कृत-वृत्तों का पार्थक्य निर्धारण हेतु उन्होंने कई तत्त्वों की खोज की–जिनमें गुरु-लघु-क्रम, यति, पाद-प्रमाण आदि उल्लेखनीय हैं। वृत्त के विस्तार हेतु प्रस्तार-विधि, वृत्त-स्वरूप ज्ञान हेतु नष्टोद्दिष्टविधि आदि प्रक्रियाएँ भी पिङ्गलमुनि की देन हैं। इन्होंने लघु-गुरुक्रम-विन्यास हेतु मात्रागण तथा वर्णगण की प्राथमिक व्यवस्था दी तथा चार मात्राओं का पाँच मात्रागण[2] और तीन अक्षरों (त्रिक) का आठ अक्षरगण[3] प्रतिपादित कर वृत्त-लक्षण प्रवर्तन की नयी शैली अपनायी। पिङ्गलमुनि ने सम-विषम पादों के आधार पर वृत्त-वर्गीकरण किया तथा पादमध्य में यति की व्यवस्था भी दी। छन्द:शास्त्र के आठ अध्यायों में इन्होंने प्रस्तारविधि (वृत्तांश-कल्पना या वृत्तविस्तार), नष्ट (गुरु-लघु विवेक) एवं उद्दिष्ट (अभिलषित वृत्तभेद) आदि के ज्ञान हेतु प्रस्तार-विधि, नष्टोद्दिष्टविधि, मेरु-पताका-मर्कटी आदि शास्त्रीय विधियाँ दी हैं। इस तरह पिङ्गलछन्द:सूत्र संस्कृतवृत्तों के अनुशीलन का एक सर्वाङ्गपूर्ण प्रामाणिक और प्राथमिक ग्रन्थ है। यही कारण है कि छन्द:शास्त्र के अन्तिम आचार्य होने के कारण **'मुनीनामुत्तरोत्तरं प्रामाण्यम्'** के अनुसार इन्हें प्रमाणभूत आचार्य माना गया तो संस्कृत-वृत्त-शास्त्र के आद्य आचार्य के रूप में इनका नामोल्लेख प्रथमत: किया जाता रहा है। पिङ्गलमुनि के अनन्तर संस्कृतवृत्त ही अनुशीलन का मुख्य विषय बन गया और 'वृत्तरत्नाकर', छन्दोमञ्जरी' जैसे ग्रन्थों का प्रणयन होने लगा। पिङ्गलमुनि के अनन्तर इनके 'छन्द:सूत्र' की बहुत दिनों तक टीकाएँ लिखी जाती रही। छन्द:सूत्र के वृत्तिकारों में भट्टहलायुध की 'संजीवनी टीका' अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त यादव प्रकाश, रामानुज, भास्कर राय आदि कतिपय टीकाकार हुए हैं, जिनकी टीकाएँ प्राप्त होती हैं। इसके साथ ही वृत्तविषयक सरल एवं व्यापक ग्रन्थों का प्रणयन भी प्रारंभ हुआ। हलायुध के पश्चात् जयदेव ने छन्दोविषयक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा।

---

1. (क) द्रष्टव्य–ऋक्प्रातिशाख्य–छन्द:पटल
   (ख) द्रष्टव्य–ऋक्सर्वानुक्रमणी–कात्यायन
2. 'ल: समुद्रा गण:–छन्द:सूत्र 4/13
   (पाँच मात्रा गण हैं–भगण, जगण, सगण, दो गुरुओं का मगण तथा चार मात्राओं का नगण)
3. 'मयरसतजभनलगसम्मितं भ्रमति वाङ्मयं जगति यस्य।
   स जयति पिङ्गलनाग: शिवप्रसादाद्विशुद्धमति॥ छ० सू० 1/5
   [आठ अक्षरगण–मगण (SSS), यगण (ISS), रगण (SIS), सगण (IIS), तगण (SSI), जगण (ISI), भगण (SII) एवं नगण (III)]

उनका ग्रन्थ 'जयदेव-छन्द:' के नाम से जाना जाता है। इसके अनन्तर जैन आचार्य जयकीर्ति ने 'छन्दोऽनुशासन' नामक छन्दोग्रन्थ लिखा। इसी परम्परा में केदारभट्ट ने 'वृत्तरत्नाकर' नामक ग्रन्थ की रचना की। इनकी शैली सूत्रात्मक न होकर पद्यात्मक है। इस ग्रन्थ में लगभग एक सौ छत्तीस पद्य हैं। इस छोटे से ग्रन्थ में छन्दोज्ञान के लिए आवश्यक सभी बातों का संक्षिप्त एवं सरल निरूपण हुआ है। इसकी शैलीगत दूसरी विशेषता यह है कि इसमें वृत्त-लक्षणपरक पद्यांशों में निरूप्यमाण वृत्त का लक्षण घटित है।[1] इसके फलस्वरूप वृत्त-लक्षण मात्र के अनुशीलन से पाठक इसके उदाहरण से भी एक साथ परिचित हो जाते हैं। इसी कारण से 'वृत्तरत्नाकर' छन्दोविषयक ग्रन्थों में सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ और धीरे-धीरे यह वृत्त-ज्ञान का एक मात्र आधार ग्रन्थ बन गया। इसी क्रम में 'छन्द:सूत्र' जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ को भूल से गये। क्षेमेन्द्र ने वृत्त-विनियोग से सम्बन्धित 'सुवृत्त-तिलक' ग्रन्थ का प्रणयन किया। किस रस भावादि में कौन-सा वृत्त उपादेय है, यह विवेचन इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है।[2] इस क्रम में यहाँ कतिपय कवियों के वृत्त प्रयोग-कौशल का निदर्शन हुआ है।[3] क्षेमेन्द्र ने छोटे पद्यों के मध्य में यति-विधान का निषेध किया है। समीक्षकों के लिए 'सुवृत्त-तिलक' एक महनीय ग्रन्थ प्रमाणित हुआ। वृत्त-विनियोग से सम्बन्धित चर्चा नाट्यशास्त्र में भी उपलब्ध है, किन्तु यह अत्यल्प है।[4] अत: छन्दोविदों को वृत्त-विनियोग की दिशा में भी सिद्धान्त प्रतिपादित करना चाहिए, लेकिन क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त किसी भी आचार्य ने एतद्विषयक ग्रन्थ नहीं लिखा है और न वृत्त-लक्षण ग्रन्थ में ही इस विषय को स्थान दिया है। वृत्त-शास्त्रीय ग्रन्थों में वृत्तों का निरूपण संक्षेप या प्रमुखता के आधार पर किया जाता रहा है। अध्ययन की दृष्टि से यह ठीक भी है, किन्तु छन्दोज्ञान की पर्याप्तता के लिए बृहत् छन्द:शास्त्र की आवश्यकता

---

1. स्रग्धरा वृत्त का लक्षण–
"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण-त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम।" वृत्तरत्नाकर 3/103
उपर्युक्त लक्षण में स्रग्धरावृत्त का उदाहरण भी घटित होता है।
2. प्रबन्ध: सुतरां भाति यथास्थाननिवेशितै:।
निर्दोषगुणसंयुक्तै: सुवृत्तैर्मौक्तिकैरिव ।।
काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित् ।।–सुवृत्ततिलक
3. वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाऽधिकीकृता ।।
वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसङ्गिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ।।
भवभूते: शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ।।
सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।
शार्दूलविक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखर: ।–सुवृत्ततिलक
4. करुणे शक्वरी चैव तथा चातिधृति: स्मृता ।।
यद्वीरे कीर्त्यते छन्दस्तद्रौद्रे सम्प्रयोजयेत्।
शेषाणामर्थयोगेन छन्द: कार्यं तथा रस: ।।–नाट्यशास्त्र 16/115

महसूस की गयी जिससे संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त वृत्तों का ज्ञान किया जा सके। इस हेतु हेमचन्द्र ने 'छन्दोऽनुशासन' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें अधिकाधिक वृत्तों का निरूपण किया गया है। 'वृत्तरत्नाकर'–'छन्दोमञ्जरी' आदि ग्रन्थों में सौ से दो सौ के लगभग छन्दों का निरूपण है तो 'छन्दोऽनुशासन' में पाँच सौ से अधिक वृत्तों का विवेचन है। यहाँ प्राकृत छन्दों का निरूपण भी आचार्य का उद्देश्य रहा है, क्योंकि हेमचन्द्र एक जैन आचार्य हैं तथा जैन-साहित्य प्राकृतभाषा में निबद्ध है। 'प्राकृत-पैङ्गल' के बाद यह दूसरा ग्रन्थ है जिसमें प्राकृत-छन्दों का विश्लेषण इतने विस्तार से किया गया है। निःसन्देह यह एक विस्तृत ग्रन्थ है, जिसकी उपादेयता साधारण पाठकों के लिए, नहीं के बराबर है। साधारण पाठकों के लिए गङ्गादास ने 'छन्दोमञ्जरी' नामक ग्रन्थ लिखा। यह अत्यन्त सरल एवं संक्षिप्त शैली में निबद्ध है। इसमें आचार्य ने स्वनिर्मित उदाहरण भी दिये हैं। ये सभी उदाहरण श्रीकृष्ण की स्तुति में निर्मित हैं। इनकी कविता ने सुकुमार मति बालकों को आकृष्ट किया और 'छन्दोमञ्जरी' की खूब प्रसिद्धि हुई। वस्तुतः 'वृत्तरत्नाकर' और 'छन्दोमञ्जरी' ये दोनों ग्रन्थ ही छन्दोज्ञान के लिए पढ़े जाने लगे। विशेषज्ञों के लिए बृहत् ग्रन्थ भी उपादेय रहे। 'वाग्वल्लभ' नामक छन्दोग्रन्थ दुःखभञ्जन कवि की बृहत् रचना है। इसमें सहस्राधिक वृत्तों का निरूपण है। इसकी रचना सत्रहवीं-अट्ठारहवीं शदी में की गयी है। इसमें प्रस्तारक्रम से प्रचलित वृत्त-भेदों को सजाकर लक्षण दिया गया है। लक्षण अधिकांश में वृत्तरत्नाकर से लिये गये हैं। इसमें पृथक् से उदाहरण नहीं दिया गया है, इस तरह यह एक लक्षण-संग्रह मात्र है। फिर भी यह वृत्त-लक्षण का बृहत्तम संग्रह होने के कारण विशेष उपयोगी है। इस प्रकार वृत्तों का अनुशीलन चिरकाल से किया जाता रहा है तथा साहित्य-सृष्टि की प्रवहमान परम्परा के आवश्यकतानुरूप इसका अनुशीलन होता रहेगा।

संस्कृत-वृत्त-वर्गीकरण

संस्कृतवृत्तों को दो वर्गों में बाँटा गया है–**वर्णवृत्त** और **मात्रावृत्त**।[1] वर्णवृत्त के भी समचरण-अर्द्धसमचरण और विषमचरण ये तीन भेद होते हैं।

समचरण–समचरण वृत्त में चारों पाद समान आकार-प्रकार के होते हैं। इसके प्रत्येक पाद में गुरु-लघुक्रम, अक्षर-संख्या तथा यति आदि एक समान होते हैं। इस तरह समचरण वृत्त को सर्वसम या समवृत्त कहा जाता है।[2]

अर्द्धसमचरण–अर्द्धसमचरण वृत्त में दो पाद एक समान होते हैं। इसके प्रथम-तृतीय, द्वितीय-चतुर्थ, द्वितीय-तृतीय, प्रथम-चतुर्थ, प्रथम-द्वितीय, तृतीय-चतुर्थ आदि अनेक पादयुग्म बनते हैं जिसके आधार पर वृत्त-प्रभेद कल्पित होते हैं।[3]

---

1. आदौ तावद्गणच्छन्दो मात्राछन्दस्ततः परम्।
तृतीयमच्छरछन्दः छन्दस्त्रेधा तु लौकिकम्॥
किसी आचार्य ने संस्कृत-वृत्तों को तीन वर्गों में बाँटा है। गणच्छन्द (आर्यादि), मात्राछन्द (वैतालीय आदि) तथा अक्षर छन्द (उपेन्द्रवज्रा आदि)।
2. अङ्घ्रयोर्यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः।
तच्छन्दः शास्त्रतत्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते॥ वृ० र० 1/14
3. प्रथमाङ्घ्रिः समो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत्।
द्वितीयस्तुर्यवद्वृत्तं तदर्धसममुच्यते॥ –वृ० र० 1/15

विषमचरण–विषमचरणवृत्त में चारों पाद विषम होते हैं अथवा कोई एक पाद विषम होता है। इस प्रकार विषमवृत्त के दो भेद होते हैं–सर्वविषम और पादविषम। सर्वविषमवृत्त में चारों पाद विषम लक्षण के होते हैं; जबकि पादविषमवृत्त में कोई एक पाद ही विषम रहता है।[1] वर्णवृत्त का एक अन्य भेद **'उपजाति'** है। उपजाति से तात्पर्य है एकाधिक या दो या दो से अधिक वृत्तों का संकर (मिश्रण)[2] इस तरह उपजाति वृत्तसंकर का बोधक है। विषम अथवा अर्द्धसम वृत्तों में उपजाति का संशय नहीं करना चाहिए क्योंकि उनमें विषम-लक्षण-पाद रहने पर भी वृत्त-सांकर्य नहीं होता है। उपजाति का भिन्न-भिन्न पाद पृथक् से वृत्त से सम्बद्ध होता है जबकि विषम-अर्द्धसम वृत्तों के पाद किसी तृतीय वृत्त से सम्बद्ध नहीं होते हैं। उपजाति के भी दो प्रकार होते हैं–सजाति और भिन्न जाति। सजाति से तात्पर्य है समान अक्षर और पाद युक्त छन्द के वृत्तांशों का मिश्रण।[3] उदाहरणस्वरूप इन्द्रोपेन्द्रवज्रा एकादशाक्षर छन्दः प्रस्तार के दो प्रभेद हैं जिनके पाद-मिश्रण से एक उपजाति वृत्त होता है। वैदिक साहित्य में यह त्रिष्टुप् छन्द कहलाता है तो संस्कृत-साहित्य में उपजाति नामक वृत्त। इसी प्रकार इन्द्रवंशा और वंशस्था द्वादशाक्षर जगती छन्दः प्रस्तार के दो भेद हैं तथा पृथक् वृत्त के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार दो वृत्तों के संकर से उपजाति वृत्त बनते हैं। प्रस्तार विधि से किन्हीं दो वृत्तों के मिश्रण से चौदह प्रकार की उपजाति कल्पित होती है। छन्दोविदों ने इसके नाम भी निदर्शित किये हैं।[4] भिन्न जाति से तात्पर्य है भिन्न-भिन्न अक्षर-पाद युक्त वृत्त-मिश्रण की उपजाति।[5] यह विषम-वृत्त की कोटि में आयगी। इस तरह सम-विषम-अर्द्धसम आदि भेद मुख्यतः पादाक्षर-संख्या के आधार पर होता है। अतः केवल पादाक्षर संख्या के आधार पर विषमता या अर्द्धसमता होती है तो वह शुद्ध वृत्त है, जबकि दो सम अथवा त्रिषम वृत्त-पादों का सम्मिश्रण उपजाति है। यही वृत्त एवं उपजाति में भेद है। इस प्रकार के उपजातिवृत्त आर्ष काव्यों-रामायण, महाभारत तथा पुराणादि में खूब प्रयुक्त हुआ है।[6]

---

1. यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम्।
   तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दः शास्त्रविशारदाः॥ वृ० र० 1/16
2. आद्यन्तावुपजातयः।–छन्दः सूत्र–6/23
3. (क) 'समाक्षरजातिमिश्रणमेवोपजातिः–छन्दः सूत्र–हलायुधटीका पृ० 293
   (ख) इंद उविंदा एक्क कविजसु चउग्गल दह णाम मुणिज्जसु।
   सम जाइहिं सम अक्खरदिज्जसु पिंगल भण उपजाइहि किज्जसु॥–प्राकृतपिंगल–2/119
4. कित्तीबाणी माला साला हंसी माआ जाआ बाला।
   अद्दा भद्दा पेम्मा रामा रिद्धीबुद्धी तासू णामा॥ प्राकृतपैंगल–2/22
   संस्कृतरूपान्तर–कीर्त्तिर्बाणी मालाशाला हंसी माया जाया बाला।
   आर्द्रा भद्रा प्रेमा रामा ऋद्धिर्बुद्धिस्तासां नामानि॥
5. 'द्वयोरेव जात्योर्मिश्रणमेव उपजातिः।'–छन्दःसूत्र–हलायुधटीका पृ० 293
6. (क) इन्द्रोपेन्द्रवज्रा का उदाहरण रामायण में–
   इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः।
   संश्रित्य तस्मिन् निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी॥ रामा० सुन्दर० 7/32
   (ख) इन्द्रोपेन्द्रवज्रा का उदहारण महाभारत में–
   नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके साङ्करिके कृतघ्ने।
   न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे न चापि चौरे न गुरुष्वसूये॥ महा० अनु० 11/7
   (ग) इन्द्रवंशा+वंशस्थ का उदाहरण रामायण के अयोध्याकाण्ड में–
   गतप्रभा द्यौरिव भास्करं विना व्यपेत नक्षत्रगणेव शर्वरी।
   पुरी बभासे रहिता महात्मना कण्ठास्रकण्ठाकुलमार्गचत्वरा॥–रामा० अयो० 66/28
   (घ) श्री मद्भागवत महापुराण में इन्दोपेन्द्रवज्रा का उदाहरण–
   अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम्।
   पौत्रस्तव श्री ललनाललामं द्रष्टास्फुरत्कुण्डलमण्डितानम्॥–श्रीमद्भा० महा० पृ० 3/14

मात्रावृत्त-वर्गीकरण

संस्कृतवृत्तों का (वर्णवृत्त के बाद) दूसरा वर्ग मात्रावृत्तों का है। मात्रावृत्त के भी दो वर्ग हैं–**मात्रागणवृत्त** और **मात्रावृत्त**। मात्रागणवृत्त को गणवृत्त भी कहा जाता है। गणवृत्त–मात्रागणों का विकास वर्ण-गणों के समानान्तर हुआ जान पड़ता है। चार मात्राओं का एक गण होता है।[1] मात्रा गणों की संख्या पांच है।[2] इनके नाम वर्णगण के समान हैं। म य र स त ज भ तथा न इन आठ वर्णगणों में से तगण (ऽऽ।), यगण (।ऽऽ), रगण (ऽ।ऽ) को छोड़कर शेष पाँच गण मात्रागण माने जाते हैं। इसमें मगण में मात्र दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। यदि चार मात्राओं का प्रस्तार करें तो ये पाँच प्रकार बनते हैं–ऽऽ (मगण), ।।ऽ (सगण), ऽ।। (भगण), ।ऽ। (जगण) और ।।।+। (नगण+एक लघु)। नगण में चार लघु होते हैं अतः वृत्तज्ञों ने इसे न लघु कहा है। इन पञ्चधा मात्रागणों के क्रम में मात्राविन्यास से बनने वाले मात्रावृत्त गणात्मक होने से गणवृत्त कहलाते हैं। गणवृत्त में प्रायः दो अर्धक होते हैं। इनके व्यत्यास (ऊपर नीचे उलटकर) अथवा विस्तार (दोनों अर्द्धकों को एक समान आकार प्रदान कर) कई भेद बनते हैं। गणवृत्त के **प्रमुख तीन भेद** हैं–आर्या, चपला और गीति। इनके भी पुनः तीन-तीन भेद होते हैं। इस तरह आर्या के नौ भेद होते हैं।[3] भेदोप-भेद के सम्मिश्रण से आर्या के कुल अस्सी भेद किये जाते हैं। गणवृत्त के आर्या आदि प्रकरण-विभाग का यही आधार होता है।

मात्रावृत्त–मात्रावृत्त शुद्ध मात्रिक वृत्त है। इसमें मात्रा-संख्या मुख्य घटक होती है। इसके सम-विषम-अर्द्धसमचरण आदि भेद भी किये जाते हैं। लेकिन मात्रावृत्त वर्णवृत्त की तरह चतुष्पाद नहीं होता है। इसके पादों की संख्या दो-दो के क्रम में बढ़ती हुई आठ या नौ तक पायी जाती है। अतः इसका प्रकरण-विभाग द्विपाद, चतुष्पाद, षट्पाद, अष्टपाद और सपाद (एक अतिरिक्त पाद वाला या नवपदी) आदि होता है। मात्रावृत्त की संरचना-शैली भी भिन्न पायी जाती है। इसमें समपाद, विषमपाद, वर्धमान आदि पाद-संरचनाक्रम होता है। प्रतिपाद समान होने पर सम, इसके विपरीत विषम तथा प्रतिपाद दो-दो, चार-चार मात्रा बढ़ने पर वर्धमान पाद-संरचना होती हैं। इस तरह मात्रावृत्त के कई प्रकरण होते हैं। यही कारण है कि मात्रावृत्तों का सामान्य-प्रकरण-विभाग नहीं पाया जाता है। छन्दोविद् आचार्य इनकी आकृति-प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं। छन्दःसूत्र में आचार्यपिङ्गल ने मात्रावृत्तों को आर्या, वैतालीय, मात्रासम, गीत्यार्या आदि प्रकरण-विभाग किये हैं।

---

1. लः समुद्रा गणः' छन्दः सूत्र–4/13
2. ज्ञेयाः सर्वान्तमध्यादिगुरवोऽत्र चतुष्कलाः।
   गलाश्चतुर्लघूपेताः पञ्चार्यादिषु संस्थिताः॥ वृ० र० 1/8
3. पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च।
   गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधाऽऽर्या॥ छ० म० 5/3

पादाकुलक–मात्रावृत्त का एक अन्य भेद पादाकुलक है। जब भिन्न-भिन्न मात्रावृत्त-पादों के मिश्रण से किसी वृत्त की रचना होती है, तो उसे पादाकुलक वृत्त कहते हैं। पादाकुलक की वर्णवृत्त की उपजाति कोटि से तुलना की जाती है। वृत्तरत्नाकर में वक्त्र-अपरवक्त्र आदि प्रकरण भी मिलते हैं। म० म० गोकुलनाथ के 'एकावली' छन्दोग्रन्थ में गाथा गलित-दोहा-सवया आदि प्रकरण-विभाग पाया जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मात्रावृत्तों का प्रकरण-विभाग प्राकृत-वर्गीकरण से प्रभावित है। गाथा-दोहा-सवया आदि छन्द प्राकृत-साहित्य में तथा अपभ्रंश-साहित्य में विशेष प्रसिद्ध है। म० म० गोकुलनाथ ने इनका प्रयोग संस्कृत-साहित्य में करने हेतु 'एकावली' में ये प्रकरण रखे हैं। 'देशिल वयना सवजन मिट्ठा' विद्यापति की प्रसिद्ध है। इसी मार्ग पर चलते हुए माधुर्य की दृष्टि से इन मात्रावृत्तों का प्रयोग संस्कृतसाहित्य में भी स्पृहणीय है, यह गोकुलनाथ का अभिप्राय जान पड़ता है। वाग्वल्लभकार ने अपने ग्रन्थ में इन वृत्तों का निरूपण कर अपनी सम्मति प्रकट की है यह कहा जा सकता है। इन वृत्तों की मनोहारिता देखनी हो तो गोकुलनाथ की एकावली के **उदाहरण**–पद्यों का अवलोकन करना चाहिए।

संस्कृतवृत्त-विस्तार

वैदिक छन्दोविधान में छन्दों का विस्तार भिन्न-भिन्न पादों के मिश्रण द्वारा किया जाता रहा जिससे हजारों छन्दोभेद कुल छब्बीस जातियों में अन्तर्भूत माने गये, किन्तु संस्कृत-वृत्तों के घटक तत्त्व-अक्षरसंख्या एवं लघु-गुरु अक्षरक्रम आदि के भेद होने से यह अत्यधिक विस्तार को प्राप्त हो सका। छन्दों से शुद्ध वृत्तों का विकास प्रस्तारविधि द्वारा सरलता से सम्पन्न होता है। वृत्तज्ञों ने प्रस्तार-विधि का अन्वेषण कर वृत्तांशों को प्राप्त करने का सरल मार्ग उन्मीलित किया है। वृत्तों के सम्यक् विस्तार को समझने के लिए प्रस्तार-विधि की जानकारी आवश्यक है।

प्रस्तार-विधि[1]–गायत्री आदि छन्दःपाद के बराबर गुरु वर्ण स्थापित कर वायीं ओर से दायीं ओर लघुवर्ण की स्थापना तब तक करनी चाहिए जब तक कि सभी वर्ण लघु नही आ जाते। इस क्रिया में वायीं ओर से प्रथम गुरु के नीचे लघु वर्ण रखकर शेष दाहिने तरफ में ऊपर की पंक्ति रखनी चाहिए, वायीं जगह में सभी गुरु वर्ण रखने चाहिए। उदाहरण के लिए तीन अक्षर के छन्द का प्रस्तार निम्नलिखित प्रकार से होगा–

---

1. पादे सर्वगुरावाद्याल्लघुं न्यस्य गुरोरधः।
यथोपरि तथा शेषं भूयः कुर्यादमुं विधिम्॥
ऊने दद्याद्गुरूनेव यावत्सर्वलघुर्भवेत्।
प्रस्तारोऽयं समाख्यातश्छन्दोविचिति-वेदिभिः॥–छ० मं० 6/2-3

ऽऽऽ—मगण
।ऽऽ—यगण
ऽ।ऽ—रगण
।।ऽ—सगण
ऽऽ।—तगण
।ऽ।—जगण
ऽ।।—भगण
।।।—मगण

इस प्रकार वर्णवृत्त-विधायक त्र्यक्षर गणों की संख्या आठ होती है ।[1] किसी भी स्थिति में नवां भेद संभव नहीं है । इसी तरह गायत्री आदि छन्दों के वृत्तांशों की कल्पना एवं गणना की जा सकती है । वृत्तांश-गणना-विधि-वृत्तांशों की गणना के लिए वृत्तज्ञों ने सरल विधि प्रदर्शित की है । इस विधि से प्रत्येक छन्द के वृत्तांशों की गणना सरल हो जाती है । छन्दः पाद के बराबर लघु अथवा गुरुवर्ण रखकर वायीं ओर से दाहिनी ओर शीर्ष पर एक के अनन्तर दूसरे पर द्विगुणित संख्या डालनी चाहिए तथा अन्तिम वर्ण के शीर्षस्थ संख्या में पूर्व संख्याओं का योग करने से प्राप्त कुल योग में 'एक' जोड़ने से वृत्तांशों की कुल संख्या प्राप्त होती है । इस क्रिया के अनुसार गायत्री छन्द– $\overset{1}{ऽ}\overset{2}{ऽ}\overset{4}{ऽ}\overset{8}{ऽ}\overset{16}{ऽ}\overset{32}{ऽ}$ = के शीर्षस्थ संख्याओं का योग 31 + 32 = 63 होता है इसमें एक जोड़ने से गायत्री छन्द के 64 वृत्तांश होने का ज्ञान होता है । नाट्यशास्त्र में गायत्री आदि छन्दों के वृत्तांशों की कुल संख्या का निर्देश करते हुए महायोग तेरह करोड़ से भी अधिक बताया गया है । इनमें से कविगण रस तथा वर्णन के अनुरूप यथारुचि वृत्तों का प्रयोग करते हैं ।

नष्टोद्दिष्ट प्रकार—वृत्तांश गणना-विधि की तरह वृत्तस्वरूप तथा वृत्तसंख्या के ज्ञान हेतु वृत्तज्ञों ने नष्टोद्दिष्ट-विधि प्रदर्शित की है । इस विधि द्वारा कौन-सा वृत्तस्वरूप किस संख्यात्मक है, अथवा अमुक संख्यक वृत्तस्वरूप किस प्रकार का होगा या अमुक संख्यक वृत्तस्वरूप समुचित है या नहीं इत्यादि का ज्ञान सरलता से होता है । नष्ट का तात्पर्य है लघु-गुरुक्रम का नाश तथा उद्दिष्ट से तात्पर्य है अभिलषित वृत्तभेद का ज्ञान । वृत्तस्वरूप लिखकर वह कौन सा भेद है यह ज्ञान उद्दिष्ट प्रकार से होता है और किसी खास (छन्दः) जाति का निश्चित भेद-स्वरूप क्या होगा यह ज्ञान नष्ट-प्रकार से होता है । इस प्रकार वृत्तस्वरूप-ज्ञान करने हेतु नष्टविधि एवं वृत्त-भेद-ज्ञान हेतु उद्दिष्टविधि का प्रयोग किया जाता है ।

उद्दिष्टविधि[2]—यदि यह अवगत करना हो कि गायत्री छन्द का तनुमध्या वृत्त– $\overset{1}{ऽ}\overset{2}{ऽ}\overset{4}{।}\overset{8}{।}\overset{16}{ऽ}\overset{32}{ऽ}$ कौनसा भेद है तो उद्दिष्टविधि द्वारा इसका उत्तर दिया जा सकता है । इस

1. 'वसवस्त्रिकाः'–छ० सू० 8/23
2. उद्दिष्टं द्विगुणानाद्यादुपर्यङ्कान् समालिखेत् ।
लघुस्था ये तु तत्राङ्कास्तैः सैकैः मिश्रितैर्भवेत् ।।–वृ० र० 6/5

विधि में बायीं ओर से दायीं ओर एक के अनन्तर दूसरे शीर्ष पर द्विगुणित संख्या रखकर लघुशीर्षस्थ संख्याओं के योग में एक जोडने से उद्दिष्ट-भेद प्राप्त किया जाता है। तदनुसार पूर्वदर्शित लघुशीर्षस्थ संख्याओं (4+8) = का योग 12 है। जिसमें एक जोड़ने से वर्तमान 13वाँ भेद है, यह ज्ञान होता है। अतः तनुमध्या वृत्त गायत्री छन्द-प्रस्तार का 13वाँ भेद है।

नष्टविधि[1]—नष्टविधि से अभिलषित वृत्तस्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। गायत्री छन्दःप्रस्तार का 24वाँ भेद किस प्रकार का होगा तो इसे प्रस्तार-विधि से जानने में विलम्ब होगा तथा अधिक क्रिया करनी होगी, किन्तु नष्टविधि से यह कार्य सरल हो जाता है। इस विधि में यदि प्रश्नाङ्क सम हो तो प्रथम लघु और यदि विषम हों तो प्रथम गुरु लिखना चाहिए। सम का आधा करने पर सम आएगा और लघु लिखा जायगा, किन्तु विषम का आधा करने के लिए एक जोड़ना होगा तथा आधा करने पर सम आने से लघु तथा विषम आने से गुरु लिखना चाहिए। यह क्रिया तबतक करनी चाहिए जब तक पाद की पूर्त्ति नहीं हो जाती है। पूछा गया प्रश्नांक (गायत्री छन्दः प्रस्तार का 24 वाँ भेद) सम है, अतः प्रथम लघु, 24 का आधा 12 सम है, अतः द्वितीय वर्ण लघु, 12 का आधा छः सम है, अतः तृतीय वर्ण भी लघु लिखा जायगा। छः का आधा तीन विषम है, अतः चतुर्थ वर्ण गुरु और तीन विषम हैं इसका आधा करने हेतु एक जोड़कर चार का आधा करने से प्राप्त दो सम होता है, अतः पंचम वर्ण लघु तथा दो का आधा एक विषम है. अतः छठा वर्ण विषम होगा। इस प्रकार गायत्री छन्दः प्रस्तार का चौबीसवाँ भेद-स्वरूप होगा—$\overset{1}{|}\,\overset{2}{|}\,\overset{4}{|}\,\overset{8}{S}\,\overset{16}{|}\,\overset{32}{S}$ । अद्दिष्ट विधि द्वारा इसके लघु शीर्षस्थ संख्याओं (1+2+4+16) का योग 23 है जिसमें एक जोड़ने से 24 होता है, अतः यह गायत्री छन्दः प्रस्तार का चौबीसवाँ भेद यह प्रमाणित होता है। इस तरह संस्कृतवृत्तों का अत्यधिक विस्तार संभव हो पाता है। अतः नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतने वृत्तों के असंख्य भेद माने हैं।[2] इसके भेदोपभेदों का साकल्येन परिगणन असंभव सा है। इस प्रकार प्रस्तार-विधि, परिगणन-विधि, नष्ट एवं उद्दिष्टविधि द्वारा किसी छन्दोजाति के कुल वृत्तांशों की संख्या, इच्छित भेद-स्वरूप तथा भेद-संख्या का ज्ञान सरल होता है। अतः इन विधियों का ज्ञान वृत्तज्ञों के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इससे न केवल संशय का निवारण होता है, वल्कि निपुणता भी प्राप्त होती है। छन्दः शास्त्र की कुछ अन्य विधियाँ भी हैं जिनमें मेरु-पताका-मर्कटी, ल-ग. क्रिया आदि प्रमुख हैं। ल, ग-क्रिया से तात्पर्य है किसी छन्दोजाति में वृत्तों की कुल संख्या में लघु-गुरु संख्या के आधार पर कितने भेद होंगे। स्पष्टीकरण के लिए गायत्री (षडक्षर) छन्द के प्रस्तार में चार लघु वाले कितने भेद होंगे, यह ल ग-क्रिया द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है। इसके साथ ही कुल वृत्त-संख्या का ज्ञान भी इसके द्वारा संभव है। इसी प्रकार मेरु—पताका-मर्कटी आदि विधियों की उपयोगिता देखी जाती है।

---

1. नष्टस्य यो भवेदङ्कस्तस्यार्धेऽर्धे समे च लः।
   विषमे चैकमादाय तस्यार्धेऽर्धे गुरुर्भवेत्॥ वृ० र० 6/4
2. 'असंख्यपरिमाणानि वृत्तान्याहुरथो बुधाः।'—नाट्यशास्त्र

संस्कृत-वृत्त-विधान की विशेषताएँ

वैदिक छन्दों की वैधानिक शिथिलताओं के कारण इसकी चतुरस्रता (समरसता) नहीं बन पाती थी। संस्कृत वृत्त की चतुरस्रता इसकी मुख्य विशेषता मानी गयी और इसी के आधार पर इसे छन्द न कहकर वृत्त कहा गया। संस्कृतवृत्तों में चतुरस्रता भंग होने पर प्रत्यवाय का निर्देश नहीं मिलता है, किन्तु वृत्तज्ञों का सिद्धान्त है कि वृत्तभंग नहीं होना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो लघु को गुरु अथवा गुरु को लघु पढ़ा जाय किन्तु वृत्तभंग नहीं होने देना चाहिए। यह एक गंभीर दोष माना गया है।[1] इस तरह संस्कृतवृत्तों की वर्तुलता (पादों की चतुर्धावृत्ति) का निर्वाह अनिवार्य नियम है। इसके **'वृत्त'** इस नामकरण के पीछे यह वर्तुलता ही मुख्य घटक है। इसके अभाव में 'वृत्त' यह नामकरण अन्वर्थ नहीं होता है। नाट्यशास्त्र में भरत ने भी इसी प्रकार का अभिप्राय व्यक्त किया है। संस्कृत-वृत्तों की चतुरस्रता के साधन हेतु वृत्तज्ञों ने कतिपय नियम बनाये हैं जिनका कठोरता से पालन आवश्यक माना गया है। इन नियमों के पालन-क्रम में संस्कृतवृत्त की विशेषताओं का उद्घाटन होता है। संस्कृतवृत्त की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

क–अक्षरसंख्या–संस्कृतवृत्तों में प्रतिपाद अक्षरसंख्या नियत होती है। जिस वृत्त का जितना अक्षर-विस्तार माना गया है, वृत्तविधान में उतने ही अक्षर होते हैं। वैदिक छन्दः प्रणाली में छन्दः प्रमाण से एक या दो अक्षर कम-व-वेशी रहने पर भी छन्द नहीं बदलता।

ख–पादनियम–संस्कृतवृत्त-विधान में पादों का आकार निश्चित होता है। समवृत्तों में यह वृत्त का चतुर्थ भाग माना जाता है। विषम आदि में पाद का आकार सुनिश्चित नहीं माना जा सकता, किन्तु परिभाषित अवश्य रहता है। पादों की संख्या चार होती है, जिस कारण संस्कृतवृत्त चतुष्पदी या पद्य माने जाते हैं। वैदिक छन्दोविधान में पाद का आकार या पादसंख्या निश्चित नहीं थी। गायत्री आदि छन्दों में पादों की संख्या (12+12) दो, (8 × 3) तीन या (6 × 4) चार हो सकती थी। इस तरह वैदिक छन्दोविधान में पादाक्षर-संख्या तथा पाद-संख्या दोनों अनिश्चित होती थी। वहीं संस्कृत-वृत्त-विधान में पादों की संख्या एवं समानता के नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है।

ग–लघु-गुरु-नियम–संस्कृतवृत्त की चतुरस्रता के लिए लघु-गुरु क्रम से अक्षर-विन्यास की प्रक्रिया अपनायी गयी। इसके प्रत्येक पाद में अक्षर-विन्यास लघु-गुरु-क्रम में करना अनिवार्य नियम है। वैदिक छन्दोविधान में इस व्यवस्था का अभाव है। इस तरह संस्कृत-वृत्त-विधान में अक्षर-संख्या के साथ-साथ इसका आकार (ल – ग) एवं क्रम भी नियमबद्ध है। इस परम्परा के आचार्यों ने अक्षर को दो कोटियों में विभक्त किया है–लघु और गुरु। सभी ह्रस्व अक्षर लघु माने गये हैं तो सभी दीर्घ एवं अतिदीर्घ (प्लुत) अक्षर गुरु माना गया है। कुछ खास स्थितियों में लघु को भी गुरु मानने की व्यवस्था दी गयी है।[2] संयुक्त से पूर्व का अक्षर, विसर्ग तथा अनुस्वार से युक्त अक्षर, हलूवर्ण से पूर्व का अक्षर आदि गुरु माना गया है। इसके अतिरिक्त पाद के अन्त का अक्षर तथा ऋ एवं रेफ से पूर्व का अक्षर विकल्प से गुरु माना गया। संयोग से पूर्व पादान्त अक्षर आवश्यकतानुसार

1. 'अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं न कारयेत्। इत्यादि
2. 'संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसम्मिश्रम्।'–श्रुतिबोध
   अपिच–''सानुस्वारैश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
   वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥–छ० म० 1/11

(विकल्प से) लघु अथवा गुरु होगा पिङ्ल सूत्र 'प्र ह्रे वा' के अनुसार 'प्र' 'ह्र' संयुक्ताक्षर से पूर्व कोई लघु वर्ण विकल्प से गुरु माना जाएगा।[1]

इस प्रकार की कुछ अन्य व्यवस्था भी पायी जाती है, किन्तु इसके आधार पर लघु-गुरु नियम की अनियमितता नहीं मानी जा सकती है। इस तरह लघु-गुरु क्रम में अक्षरविन्यास का नियम संस्कृत-वृत्तों की विशेषता रही है।

घ–यति-नियम–संस्कृतवृत्तों में यति-नियम का पालन भी आवश्यक माना गया है। यति विच्छेद[2] अथवा विश्राम को कहा गया है। वैदिक छन्दो विधान में 'यति' पाद के अन्त में माना जाता था और पाद का आकार यति-पर्यन्त। ऐसी स्थिति में यति स्थान सुनिश्चित करना कठिन कार्य था। बड़े-बड़े वृत्तों में भी यहाँ मध्य यति का अभाव पाया जाता था। संस्कृत-वृत्तों में पादमध्य यति का भी विधाान प्राप्त होता है। पाद के आकार के अनुसार पादमध्य में एक या दो बार यति का नियम बनाया गया है। छन्दों के समग्र चरण को एक साँस में पढने में कठिनाई होती है। इसलिये पादमध्य में यति (विश्राम) होने से काव्य सुपाठ्य एवं सुश्रव्य हो जाता है। यति के प्रयोग के विषयमें क्षेमेन्द ने अपने 'सुवृत्ततिलक' में यह बात स्पष्टत: कही है कि छ: और सात अक्षरों वाले वृत्तों में यति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसे वृत्तों में वाणी विश्राम नहीं लेती है।[3] इसी कारण लम्बे वृत्तों में एक या दो बार यति-विधान आवश्यक होता है। किन्तु छोटे वृत्तों में पाद के अन्त में ही यति-विधान होता है। संस्कृत-वृत्तों (समवृत्तों) में यति-पाद समानाक्षर-संख्या पर ही होती है। जिसमें इसकी चतुरस्रता भंग नहीं होती है। अत: वृत्तज्ञों (लक्षणकारों) के लिए यति का निर्देश करना भी आवश्यक होता है। कुछ-एक वृत्तभेद तो यति के आधार पर ही कल्पित मिलता है। अत: यतिनियम का कठोरता से पालन संस्कृतवृत्त-विधान की विशेषता है। यतिभंग भी संस्कृतवृत्त-विधान में एक दोष माना गया है। यति और गति पर लय (स्वर) निर्भर करता है। यतिभंग होने से लयभंग होता है और लय वृत्त का प्राण है क्योंकि **"लीयन्ते वर्णा: अत्र इति लय:"** अर्थात् इस लय में वर्ण अन्तर्लीन होते हैं। लय में वर्णों का परस्पर पार्थक्य समाप्त होकर ऐक्य को प्राप्त कर लेता है इस प्रकार वृत्त-विधान का चरम लक्ष्य 'लय' की उपलब्धि ही है। अत: यतिभंग से वृत्त स्खलित गति हो जाता है तथा इसकी जीवन्तता आहत हो जाती है। इसलिए संस्कृतवृत्तविधान में यति-नियम का पालन एक कठोर नियम माना गया है।

---

1. यथा कुमारसंभव में–
   सा मंगलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतप्रत्युद्गमनीयवस्त्रा।
   निवृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे॥
   यहाँ 'प्रत्युद्गमनीय' शब्द में 'प्र' के पूर्व 'गृहीत' शब्द का 'त' गुरु न होकर लघु ही माना जाता है।
   अपि च–
   प्राप्य नाभिह्रदमज्जनमाशु प्रस्थितं निवसनग्रहणाय।
   औपनीविकमरुन्ध किल स्त्रीवल्लभस्य करमात्मकराभ्याम्॥–शिशुपालवध।
   इस उदाहरण में 'नाभिह्रद' शब्द में 'ह्र' अक्षर से पूर्व 'भि' अक्षर गुरु न होकर लघु ही माना गया है।
2. 'यतिर्विच्छेद:–छ० सू० 6/1
   अपि च–यति जिह्वेष्टविश्रामस्थानं कविभिरुच्यते
   सा विच्छेदविरामाद्यै: पदैर्वाच्या निजेच्छया॥ छ० मं० 1/12
   (अर्थात् उच्चारण-समयमे जिह्वा जहाँ अपनी इच्छा से विश्राम ले लेती है, उस स्थल पर आचार्यों ने 'यति' मानी है।)
3. न षट्क-सप्ताक्षरे पादे विश्राम्यति सरस्वती।
   भृङ्गीव मल्लिका बालकलिका कोटिसङ्कटे॥–सुवृत्ततिलक–2/2

द्वितीय अध्याय

मात्रावृत्त-प्रकरण

मात्रावृत्त में मुख्य घटक मात्रा मानी जाती है अक्षरों की प्रतीति मात्रा के कारण ही होती है। वृत्त का स्वरूप मात्रासंश्लिष्ट वर्ण पर ही पूर्णरूपेण निर्भर करता है। तात्पर्य मात्रा और अक्षर में आश्रयाश्रयिभाव है। मात्रा यहाँ काल के मापने की क्रिया को कहते हैं। किसी ध्वनि को उच्चारण करने में जो समय लगता है उसके माप को मात्रा कहते हैं। मात्रा दृष्टि से वर्ण दो प्रकार के होते हैं–एकमात्रिक और द्विमात्रिक। वे सभी वर्ण जिनके उच्चारण करने में कम समय लगता है, ह्रस्व या एकमात्रिक हैं। इसके अतिरिक्त वे सभी वर्ण जिनके उच्चारण करने में अधिक समय लगता है दीर्घ या अतिदीर्घ (प्लुत) माने जाते हैं तथा द्विमात्रिक कहलाते हैं।[1] अतः मात्रा-गणना-क्रम में एकमात्रिक वर्ण को एक (लघु-।) और द्विमात्रिक को दो (गुरु-ऽ) गिना जाता है। किसी भी (वर्ण अथवा मात्रा) वृत्त में व्यञ्जन वर्णों की गणना नहीं होती है। मात्रायुक्त व्यञ्जनवर्णों में मात्रा की गणना की जाती है। क्योंकि व्यञ्जनवर्ण अर्द्धमात्रिक माने जाते हैं। यहाँ व्यञ्जनवर्ण से तात्पर्य हलन्त (हल् चिह्नांकित) अथवा संयुक्त (पराश्लिष्ट) से है। मात्रावृत्त में मात्रा को गिनकर या चार-चार मात्राओं का गण बनाकर मात्रावृत्त की रचना की जाती है। मात्रावृत्त को दो वर्गों में बाँटा गया है–**मात्रावृत्त** और **मात्रागणवृत्त**। मात्रावृत्त से तात्पर्य समस्त मात्रा से है तथा मात्रागणवृत्त से मात्रा प्रधानगण से। मात्रागणवृत्त में मात्राएँ गणबद्ध होकर क्रम से विन्यस्त होती हैं अतः इसका लक्षण एवं अनुशीलन गणबद्ध मात्रा द्वारा ही संभव है। मात्रा के आधार पर तीन, चार, पांच एवं छः मात्राओं का भगण, सगण आदि आठ अक्षर-गण माना गया है। वर्ण-वृत्त में इन्हीं गणों की गणना की जाती है। पिङ्गलमुनि ने चार मात्राओं का गण माना है जिसे चतुष्कल कहते हैं, मात्रागणवृत्त में इन्हीं चतुष्कलों का ग्रहण होता है। प्रस्तार-विधि से चार मात्राओं का अधिकतम पाँच विकल्प (स्वरूप) प्राप्त होते हैं।[2] इस प्रकार अक्षरगणवृत्त हो या मात्रागणवृत्त छन्दोविधान में मात्रा की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

आर्या प्रकरण

मात्रावृत्तों को आर्या आदि पाँच प्रकरणों में रखा जा सकता है। आर्या के दो दल (अर्द्धक) होते हैं। प्रत्येक दल में सात गण और अन्त में एक गुरु (ऽ) वर्ण होते हैं। इस तरह प्रत्येक दल में सामान्यतया 30 मात्राएँ होती हैं। आर्या के नौ शुद्ध प्रकार होते हैं–1. **पथ्या**, 2. **विपुला**, 3. **चपला**, 4. **मुखचपला**, 5. **जघनचपला**, 6. **गीति**, 7. **उपगीति**, 8. **उद्गीति** और 9. **आर्यागीति**।

---

1. एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्चते।
   त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रकम्॥
2. द्रष्टव्य प्रथम अध्याय
   [पाँच मात्रागण–सर्वगुरु (ऽऽ) मगण, मध्य गुरु (।ऽ।) जगण, आदिगुरु (ऽ।।) भगण, अन्तगुरु (।।ऽ) सगण और सर्वलघु = नगण + ल (।।। ।)]

आर्या

(12+18 मात्रा)

(12+15 मात्रा)

आर्या के प्रथम दल में सात गण तथा एक गुरु (ऽ) वर्ण होते हैं। इनमें विषम (1, 3, 5, 7) संख्यक गण जगण (।ऽ।) नहीं हो सकता। छठा गण जगण (।ऽ।) अथवा लघुयुक्त नगण (।।।।) होना आवश्यक है। द्वितीय दल में यह छठा गण एक लघु (।) मात्र होता है। इसके फलस्वरूप आर्या के द्वितीय दल में गण-संख्या पूर्वदल के समान होने पर भी कुल मात्रासंख्या 27 ही होती है। दोनों दलों की मात्राओं का योग 57 होता है। यदि प्रथम दल में छठा जगण हो तो जगणषष्ठआर्या और नगणलघु हो तो नलघु–षष्ठआर्या–आर्या के ये दो भेद होते हैं। लक्षण–

'लक्ष्मैतत् सप्तगणा गोपेता भवति नेह विषमे जः।
षष्ठो जश्च नलघु वा प्रथमेऽर्धे नियतमार्यायाः॥
षष्ठे द्वितीयलात्परके न्ले मुखलाच्च सयतिपदनियमः।
चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः॥ (छ० मं०)।

उदाहरण–

1भ 2म 3स 4ज 5म 6ज 7म ग
ऽ।। ऽऽ ।।ऽ ।ऽ। ऽऽ ।ऽ। ऽऽ ऽ
आपरितोषा द्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग विज्ञा नम्
1न 2ज 3म 4म 5म 6ल 7म ग
।।।। ।ऽ। ऽऽ ऽऽ ऽऽ । ऽऽ ऽ
बलवद् पिशिक्षि ताना मात्म न्य प्र त्य यंचे तः ।।–अभि.शा.1-2

पथ्यार्या

जिस आर्या के दोनों दलों में 12-12 मात्राओं पर यति हो उसे **पथ्यार्या** कहते हैं। लक्षण–**'प्रथमगणत्रयविरतिर्दलयोरुभयोः प्रकीर्तिता पथ्या** (छ० मं०)। उदाहरण–

1भ 2ज 3स 4न 5म 6ज 7स ग
ऽ।। ।ऽ। ।।ऽ ।।।। ऽऽ ।ऽ। ।।ऽ ऽ
शान्तमि दमाश्र मपदं स्फुरतिच बाहुः कुतःफ लमिहा स्य।
1स. 2स. 3म. 4म. 5स. 6ल. 7म. ग.
।।ऽ ।।ऽ ऽऽ ऽऽ ।।ऽ । ऽऽ ऽ
अथवा भवित व्यानां द्वारा णिभव न्तिसर्व त्र॥ अभि.शा. 1/16

विपुलार्या

जिस आर्या के दोनों दलों में प्रथम तीन गणों (12 मात्राओं) को लाँघ कर यति होती है उसे **विपुलार्या** कहते हैं। लक्षण–**'संलघ्य गणत्रयमादिमं शकलयोर्द्वयोर्भवति पादः। यस्यास्तां पिङ्गलनागो विपुलामिति समाख्याति''** (छ. मं.)॥ **उदाहरण–**

1भ	2म०	3भ०	4भ०	5म०	6ज०	7स०	ग०
S I I	S S	S I I	S I I	S S	I S I	I I S	S
उन्नमि	तैक	भ्रूलत	मानन	मस्याः	पदानि	रचय	न्त्याः।

1स०	2ज०	3न०	4भ०	5म०	6ल०	7म०	ग०
I I S	I S I	I I I I	S I I	S S	I	S S	S
पुलका	ञ्चितेन	कथयति	मय्यनु	रागं	क	पोले	न ।।

अभि० शा० 3/18

चपलार्या

जिस आर्या के दोनों दलों में द्वितीय और चतुर्थ गण जगण (।S।) हो उसे **चपलार्या** कहते हैं। **लक्षण–'दलयो र्द्वितीयतुर्यौ गणौ जकारौ तु यत्र चपला सा (छ० मं०)**
उदाहरण–

2ज०	4ज०
I S I	I S I

चपला न चेत्क दाचिन्नृणांभवेद् भक्तिभावना कृष्णे।

2ज०	4ज०
I S I	I S I

धर्माथकाम मोक्षास्तदाकरस्था न सन्देहः ।। छ० मं०

मुखचपला

जिस आर्या के प्रथम दल में चपला के लक्षण घटित हो अर्थात् प्रथम दल में द्वितीय और चतुर्थ गण जगण (।S।) हो और द्वितीय दल में आर्या के लक्षण हो अर्थात् मात्रासंख्या = 27 हो उसे **मुखचपला** कहते हैं। लक्षण–**'आद्यं दलं समस्तं भजेत लक्ष्म चपलागतं यस्याः। शेषे पूर्वजलक्ष्मा मुखचपला सोदिता मुनिना (छ०मं०)।**

उदाहरण–

2ज०	4ज०
I S I	I S I

नन्दसु त ! वञ्चकस्त्वं दृ ढं न ते प्रेम गच्छ तत्रैव।
यत्र भवति ते रागः कापि जगादेति मुखचपला ।।–छ० मं०

जघन चपला

जिस आर्या के प्रथम दल में आर्या के लक्षण घटित हो अर्थात् मात्रासंख्या = 30 हो और द्वितीय दल में चपला के लक्षण हो अर्थात् द्वितीय दल में द्वितीय और चतुर्थ गण जगण (।S।) हो उसे जघनचपला कहते हैं। अथवा यह कहा जा सकता है कि मुखचपला को उलट देने से **जघनचपला** होता है। लक्षण–**प्राक्प्रतिपादितमर्धे प्रथमे प्रथमेतरे च चपलायाः। लक्ष्माश्रयेत सोक्ता विशुद्धधीभि र्जघनचपला (छ० मं०)।**

उदाहरण–

यत्पादस्य कनिष्ठा न स्पृशति महीमनामिका वाऽपि ।

2ज०	4ज०
। ऽ ।	। ऽ ।

सा सर्व धूर्त्तभोग्या भवेदवश्यं जघनचपला ॥ छ० सू० 4/27

गीति

(30 + 30 मात्रा)

जिस आर्या के प्रथम दल के समान द्वितीय दल में भी 30 (12 + 18) मात्राएँ होती हैं उसे **गीति आर्या** कहते हैं। लक्षण– **'आर्याप्रथमार्धसमं यस्या अपरार्धमाह तां गीतिम् (छ० मं०)** । **उदाहरण–**

1म०	2न०	3म०	4भ०	5म०	6ज०	7म०	ग
ऽ ऽ	। । । ।	ऽ ऽ	ऽ । ।	ऽ ऽ	। ऽ ।	ऽ ऽ	ऽ

पाटी र त व प टीयान् कःपरि पा टी मिमामु री क र्तुम् ।

1म०	2ज०	3स०	4म०	5स०	6न०	7म०	ग
ऽ ऽ	। ऽ ।	। । ऽ	ऽ ऽ	। । ऽ	। । । ।	ऽ ऽ	ऽ

य त्पिंष ता म पिनृणां पिष्टोऽ पित नो षि परिम लैःपुष्टिम् ॥ भा० विलास

उपगीति

(27 + 27 मात्रा)

जिस आर्याके दोनों आर्या उत्तरार्द्ध 27 (12 + 15) मात्राओं के बराबर हो उसे **उपगीति** कहते हैं। लक्षण– **'आर्यापरार्द्धतुल्ये दलद्वये प्राहुरुपगीतिम** (छ० मं०) उदाहरण–

1न०	2भ०	3भ०	4भ०	5भ०	6ल०	7म०	ग
। । । ।	ऽ । ।	ऽ । ।	ऽ । ।	ऽ । ।	।	ऽ ऽ	ऽ

तटिनिचि रायवि चारय विन्ध्यभु वस्तव प वित्रा याः ।

1म०	2भ०	3म०	4भ०	5म०	6ल०	7म०	ग
ऽ ऽ	ऽ । ।	ऽ ऽ	ऽ । ।	ऽ ऽ	।	ऽ ऽ	ऽ

शुष्यंन्त्या अपि युक्तं किंखलु रथ्यो द कादा नम् ॥–भा० विलास

उद्‌गीति

(27 + 30 मात्रा)

जिस आर्या के प्रथम दल द्वितीय के समान (27 मात्रा) और द्वितीय दल प्रथम के समान (30 मात्रा) हो अथवा यह कहा जा सकता है कि आर्या के दोनों दल यदि उलट कर रखे गये हों उसे **उद्‌गीति** कहते हैं। लक्षण–**''आर्याशकलद्वितीये विपरीते पुनरिहोद्‌गीतिः (छ० मं०) उदाहरण–**

1न०	2न०	3म०	4भ०	5म०	6ल०	7स०	ग
I I I I	I I I I	S S	S I I	S S	I	I I S	S

अयि भल वजमहि माऽयं कस्यगि राम स्तु विषयस ते।

1भ०	2म०	3स०	4स०	5म०	6न०	7म०	ग
S I I	S S	I I S	I I S	S S	I I I I	S S	S

उद्‌गिरतो यद् ग र लं फणिनः पुष्णा सिपरिम लोद्‌गा रैः ॥–भा० विलास

आर्यागीति

जिस आर्या के प्रथम दल में एक गुरु अधिक (30+ऽ) हो और द्वितीय दल भी प्रथम के समान (30+ऽ) हो अर्थात् दोनों दलों में 30+ऽ (2) और 30+ऽ (2) कुल 32+32 = 64 मात्राएँ हो उसे **आर्यागीति** कहते हैं। लक्षण–**'आर्या प्राग्दलमन्तेऽधिकगुरु तादृक्पराार्द्धमार्यागीतिः (छ० मं०)। उदाहरण–**

1न०	2स०	3स०	4स०	5म०	6ज०	7स०	8स०
I I I I	I I S	I I S	I I S	S S	I S I	I I S	I I S

मधुकर विटमानमितास्त रुपङ्क्तीर्बिभ्रतोऽस्यविटपा नमिताः।

1स०	2स०	3स०	4स०	5म०	6ज०	7स०	8स०
I I S	I I S	I I S	I I S	S S	I S I	I I S	I I S

परिपा कपि शङ्‌गलता रजसा रोध श्चकास्ति कपिशं गलता ॥ शिशु० 4/48

वैतालीय प्रकरण

वैतालीय

(14 + 16 मात्रा)

वैतालीय वृत्त में विषम पादों (1–3) में छः मात्राओं के अनन्तर एक रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) वर्ण होते हैं। इस प्रकार विषम पादों (1–3) में 14 मात्राएँ होती हैं। इसके सम पादों (2–4) में आठ मात्राओं के अनन्तर एक रगण

(ऽ।ऽ) और एक लघु तथा एक गुरु (।ऽ) वर्ण होते हैं। इस प्रकार इसके सम पादों (2-4) में 16 मात्राएँ होती हैं। लक्षण–**षड्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः। न समाऽत्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः (वृ० र०)। उदाहरण–**

6 | र | ल० | ग० | 8 | र | ल० | ग०
।।ऽ।।ऽ।ऽ । ऽ ।।ऽऽ।।ऽ।ऽ । ऽ

उ प कार प रः स्वभा व तः सततं सर्वज नस्य सज्ज नः।

6 | र | ल० | ग० | 8 | र | ल० | ग०
।।ऽ।।ऽ।ऽ । ऽ ।।ऽऽ।।ऽ।ऽ । ऽ

अस ता मनि शंतथाऽप्य हो! गुरु हृ द्रो गकरी त दुन्न तिः ॥–शिशु० 16 / 22

औपच्छन्दसिक

(14+ऽ, 16+ऽ मात्राएँ)

जिस वैतालीय के प्रत्येक पाद में एक गुरु (ऽ) वर्ण अधिक हो अर्थात् विषम पादों (1-3) में छः मात्रानन्तर एक रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु तथा दो गुरु (।+ऽऽ) वर्ण हो, सम पादों (2-4) में आठ मात्रानन्तर एक रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु तथा दो गुरु (।, ऽऽ) वर्ण हो उसे **औपच्छन्दसिक** वृत्त कहते हैं। लक्षण–**तत्रैवान्तेऽधिके गुरौ स्यादौपच्छन्दसिकं कवीन्द्रहृदयम् (छ० मं०)।**

उदाहरण–

6 | र | ल० | ग० | ग० | 8 | र | ल | ग० | ग०
।।।।।। ऽ।ऽ । ऽ ऽ ।।।।ऽ।। ऽ।ऽ । ऽ ऽ

कमलिनिमलि नीकरो षि चे तः किमितिबकैरव हेलिता न मी शैः।

6 | र | ल० | ग० | ग० | 8 | र | ल | ग० | ग०
।।।।।। ऽ।ऽ । ऽ ऽ ।।।।ऽ।। ऽ।ऽ । ऽ ऽ

परिणतमक रन्दमा र्मि का स्ते जगतिभवन्तुचि रायुषो मि लि न्दाः ॥–भा० वि० 1/8

आपातलिका

(14+16 मात्रा)

जिस वैतालीय पाद में एक भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) अन्त में हो उसे सूत्रकार पिङ्गलमुनि ने आपातलिका वृत्त कहा है। अर्थात् विषम पादों (1-3) में छः मात्रानन्तर एक भगण और दो गुरु (ऽऽ) वर्ण हो, कुल 14 मात्राएँ हों और सम पादों (2-4) आठ मात्रानन्तर एक भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) वर्ण हो, कुल 16 मात्राएँ हों उसे **आपातलिका** वृत्त कहते हैं। लक्षण–'**आपातलिका भ्गौ ग् (छ० सू०)। उदाहरण–**

6	भ०	ग०	ग०	8	भ०	ग०	ग०
ऽ।।ऽ	ऽ।।	ऽ	ऽ	ऽऽऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

पिङ्गलकेशीकपि ला क्षी वाचालाविकटोन्नत द न्ती।

6	भ०	ग०	ग०	8	भ०	ग०	ग०
ऽऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ	।।।।ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

आपातलिका पुन रे षा नृपतिकुलेऽपिन भाग्यमु पै ति ।।–छ० सू० 4/15

चारुहासिनी

(14 मात्रा)

जिस वैतालीय के चारों पाद प्रथम पाद के समान हो अर्थात् प्रत्येक पाद में छः मात्रानन्तर एक रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु तथा एक गुरु (।ऽ) वर्ण हो, कुल 14 मात्राएँ हों उसे **चारुहासिनी** कहते हैं। इस तरह इसके प्रत्येक में 14 मात्राएँ होती हैं। लक्षण–**'अयुक् चारुहासिनी (छ० सू०)। उदाहरण–**

6	र	ल०	ग०	6	र०	ल०	ग०
।ऽ।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ	।ऽ।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

मनाक्प्रसृत दन्तदी धि तिः स्मरोल्लसित गण्डमण्डला।

6	र	ल०	ग०	6	र०	ल०	ग०
।ऽ।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ	।ऽ।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

कटाक्षल लि ता तु का मि नी म नोह रति चारु हा सि नी ।।–छ० सू० 4/41

अपरान्तिका

(16 मात्रा)

जिस वैतालीय के चारों चरण सम (2-4) के सदृश हो अर्थात् प्रत्येक पाद में आठ मात्रानन्तर एक रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु तथा एक गुरु (।, ऽ) वर्ण हो कुल 16 मात्राएँ हो उसे **अपरान्तिका** कहते हैं। इस तरह इसके प्रत्येक पाद में 16 मात्राएँ होती हैं। लक्षण–**'युगपरान्तिका (छ० सू०)। उदाहरण–**

8	र०	ल०	ग०	8	र०	ल०	ग०
।।।ऽ।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ	।।।ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	।	ऽ

स्थिरविलासनत मौक्तिका व ली कमलकोमलाङ् गीमृगे क्ष णा।

8	र०	ल०	ग०	8	र०	ल०	ग०
।।।ऽ।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ	।।।ऽ।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

हरतिकस्यहृद यंनका मि नः सुरतकेलिकुश लाऽपरा न्ति का ।।–छ० सू० 4/42

मात्रासमक-प्रकरण

मात्रासमक

(16 मात्रा)

मात्रासमक के प्रतिपाद में 16 मात्राएँ होती हैं। इसमें नवीं मात्रा निश्चित रूप से लघु होती है तथा अन्त में एक गुरु वर्ण होता है। लक्षण–**'गन्ता द्विर्वसवो मात्रासमकं नवमः (छ० सू०)। उदाहरण–**

9ल० ग० 9ल० ग०
। ऽ । ऽ

अश्मश्रुमुखोविरलैर्दन्तै र्गम्भीराक्षो मितनासाग्रः।

9ल० ग० 9ल० ग०
। ऽ । ऽ

निर्मांसहनुः स्फुटितैः केशै र्मात्रासमकं लभते दुःखम् ॥–छ० सू०

वानवासिका

जिस मात्रासमक के प्रतिपाद में नवीं तथा बारहवीं मात्रा निश्चित रूप से लघु हो अर्थात् जिसके प्रत्येक पाद में 16 मात्राएँ हो, नवीं तथा बारहवीं मात्रा लघु हो और अन्तिम वर्ण गुरु (ऽ) हो उसे **वानवासिका** कहते हैं। लक्षण–**'द्वादशश्च वानवासिका (छ० सू०)। उदाहरण–**

9ल० 12ल० ग० 9ल० 12ल० ग०
। । ऽ । । ऽ

मन्मथचापध्व निरमणी यः सुरत महोत्सव पटह न्नि ना दः।

9ल० 12ल० ग० 9ल० 12ल० ग०
। । ऽ । । ऽ

वनवासस्त्री स्वनित विशे षः कस्य न चित्तं रमय ति पुंसः ॥–छ० सू०

विश्लोक

जिस मात्रासमक के प्रतिपाद में पाँचवीं और आठवीं मात्रा निश्चित रुप से लघु हो अर्थात् जिसके प्रतिपाद में 16 मात्राएँ हों, पाँचवीं और आठवीं मात्रा लघु हो और अन्त में एक गुरु (ऽ) वर्ण हो उसे **विश्लोक** कहते हैं। लक्षण–**विश्लोकः पञ्चमाष्टमौ (छ० सू०)। उदाहरण–**

ल०5 ल०8 ग ल०5 ल०8 ग
। । ऽ । । ऽ

भ्रातर्गुणर हितं विश्लोकं दुर्नयकरण कदर्थित लोकम्।

ल०5 ल०8 ग ल०5 ल०8 ग
। । ऽ । । ऽ
जातं महित कुलेऽप्यविनीतं मित्रं परिह र साधु विगीतम् ।।–छ० सू० 4/45

चित्रा

जिस मात्रासमक के प्रतिपाद में पाँचवीं, आठवीं और नवीं मात्रा निश्चित रुप से लघु हो, अर्थात् जिसके प्रतिपाद में 16 मात्राएँ होती हैं, पाँचवीं, आठवीं और नवीं मात्रा लघु होती है तथा अन्त में एक गुरु वर्ण होता है, उसे **चित्रा** कहते हैं। लक्षण–**'चित्रा नवमश्च (छ० सू०)। उदाहरण–**

ल०5 ल०8 ल०9 ग ल०5 ल०8 ल०9 ग
। । । ऽ । । । ऽ
यदि वाञ्छसि पर पदमारोढुं मैत्रीं प रि ह र सहवनिताभिः।
ल०5 ल०8 ल०9 ग ल०5 ल०8 ल०9 ग
। । । ऽ । । । ऽ
मुह्यति मु निरपि विषयासङ्गाच्चित्रा भवति हि मनसो वृत्तिः ।।

उपचित्रा

जिस मात्रा समक के प्रतिपाद में आठ मात्रानन्तर एक गुरु वर्ण हो अर्थात् जिसके प्रतिपाद में 16 मात्राएँ हों, आठवीं मात्रानन्तर एक गुरु वर्ण हो तथा पादान्त में भी एक गुरु वर्ण हो, उसे **उपचित्रा** कहते हैं। लक्षण–**'परयुक्तेनोपचित्रा (छ० सू०)। उदाहरण–**

8 ग० ग० 8 ग० ग०
। ऽ ऽ । ऽ ऽ
यच्चित्तं गुरु सक्तमुदारं विद्याभ्यासम हाव्यसनञ्च।
8 ग० ग० 8 ग० ग०
। ऽ ऽ । ऽ ऽ
पृथ्वी तस्य गु णैरुपचित्रा चन्द्रमरीचिनि भैर्भवतीयम् ।।–छ० सू० 4/47

पादाकुलक

जिस मात्रासमक के चारों पाद इसके ही किसी भेदोपभेद से बने हों, उसे **पादाकुलक** कहते हैं। यह एक प्रकार का उपजाति या वृत्त संकर है। लक्षण–**'एभिः पादाकुलकम् (छ० सू०)। उदाहरण–**

9ल० 12ल० ग०
। । ऽ
वहति विलासिनि सुरभि समी रे (वानवासिका)

8 ग० ग०

। ऽ ऽ

व्रससि किमालि न केलिकुटीरे। (उपचित्रा)

9ल ग

। ऽ

एवं संचारिकया गदिता (मात्रासमक)

8 ग० ग०

ऽ ऽ ऽ

व्रजललना सङ्केतं चलिता ॥ (उपचित्रा)–का० क०

गीत्यार्या

गीत्यार्या के प्रतिपाद में 16 मात्राएँ होती हैं। यदि पाद के सभी 16 लघु अक्षर हो तो उसे **गीत्यार्या** कहते हैं। इस तरह यह 16 अक्षरों का सर्वलघु वृत्त है, यह नहीं समझना चाहिए, वल्कि प्रतिपाद 16 लघुकल वर्ण होने से यह एक मात्रावृत्त ही है। लक्षण– **'गीत्यार्या लः (छ० सू०)। उदाहरण–**

16

। । । । । । । । । । । । । । । ।

म द कलखगकुलकल र व मुखरिणि

16

। । । । । । । । । । । । । । । ।

विकसित सरसिजप रि मलसु र भिणि।

16

। । । । । । । । । । । । । । । ।

गिरिवरपरिसरसरसि महति खलु

16

। । । । । । । । । । । । । । । ।

रतिरतिशयमिहममहृदि विलसति ॥ छ० सू०

शिखा 'ज्योति'

यदि गीत्यार्या के पूर्वार्द्ध के दो चरण सर्व लघु हों तथा उत्तरार्द्ध के दो चरण सर्वगुरु हों तो शिखा का प्रथम भेद होता है। इसे **ज्योति या शिखा 'ज्योति'** कहते हैं। लक्षण–**शिखा विपर्यस्तार्द्धा (छ० सू० । लः पूर्वश्चेज्ज्योतिः (छ० सू०)। उदाहरण–**

। । । । । । । । । । । । । । । ।

यदि सुखमनुपममपरमभिलषसि

I I I I I I I I I I I I I I I I

परिहर युवतिषु रति मतिशयमिह ।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

आत्मज्योतिर्योगाभ्यासात्

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

दृष्ट्वा दुःखच्छेदं कुर्य्याः ।।–छ० सू० 4/51

शिखा 'सौम्या'

यदि गीत्यार्या के पूर्वार्द्ध के दो चरण सर्वगुरु तथा उत्तरार्द्ध के दोचरण सर्वलघु हो, अथवा यह कहा जाय कि ज्योति शिखा के उलट जाने से शिखा का द्वितीय भेद होता है। उसे **शिखा 'सौम्या'** कहते हैं। लक्षण– **'गश्चेत्सौम्या (छ० सू०)'**। **उदाहरण–**

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

सौम्यां दृष्टिं देहिस्नेहात्

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

देहेऽस्माकं मानं मुक्ता ।

I I I I I I I I I I I I I I I I

शशधरमुखि ! सुखमुपनय मम हृदि

I I I I I I I I I I I I I I I I

मनसिजरु जमपहर लघुतर मिह ।।–छ० सू० 4/52

चूलिका

(29 + 31 मात्रा)

चूलिका के पूर्वार्द्ध में 29 तथा उत्तरार्द्ध में 31 मात्राएँ होती हैं। दोनों दलों में अन्त का वर्ण गुरु होता है। लक्षण– **'चुलिकैकोनत्रिशंदेकत्रिंशदन्तेग् (छ० सू०)**। **उदाहरण–**

रतिकर मलयमरुति शुचिशशि भृति

ग०29

ऽ

हतहिममहसि मधुसमये ।

प्रवससि पथिकहतक ! ननु कथमिह

ग०31

ऽ

परिहृतयुवतिरतिचपलतया ।।–छ० सू० 4/53

तृतीय अध्याय

वर्णवृत्त-प्रकरण

वर्णवृत्त में वर्ण को मुख्य घटक माना गया है। छन्दोनिर्धारण में सब प्रकार से बली अक्षर होता है।[1] वर्णों को उनके लघु और बृहत् आकार के कारण दो वर्गों में विभक्त किया गया है–लघु एवं गुरु।[2] वे सभी वर्ण जो लघु माने जाते हैं लघु याने सीधा (I) संकेत द्वारा दर्शाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे सभी वर्ण जो बृहत् आकार वाले (दीर्घ या प्लुत) होते हैं, गुरु याने वक्र (ऽ) संकेत द्वारा दर्शाये जाते हैं। संस्कृतवृत्तविधान इन्हीं निश्चित संख्यान्तर्गत लघु-गुरु वर्णों के क्रमिक विनियोग पर निर्भर करता है। इन्हीं लघु-गुरु वर्णों के क्रम एवं संख्या को बदलकर नये-नये वृत्तों का निर्माण किया गया है। संस्कृत में प्रसिद्ध वर्णवृत्त वास्तव में गणात्मक हैं। इसमें तीन-तीन वर्णों का एक गण होता है जिसे **'त्रिक'** कहा जाता है। इन गणों की अधिकतम संख्या आठ होती है। ये आठ गण हैं–1. **मगण** (ऽऽऽ), 2. **यगण** (Iऽऽ), 4. **सगण** (IIऽ), 5. **तगण** (ऽऽI) 6. **जगण** (IऽI), 7. **भगण** (ऽII), 8. **नगण** (III)। किसी वृत्त में सभी गणों का एक बार प्रयोग किया जाय तो इसका विस्तार 3 × 8 = 24 वर्णों का या एक लघु एवं एक गुरु वर्ण रखने पर 26 वर्णों का हो सकता है। इसके आगे गणों की पुनरावृत्ति होगी जिसके फलस्वरूप मालावृत्तों का विधान होगा, अथवा रगण (ऽIऽ) या गुरु-लघु की संख्या बढ़ाते हुए दण्डक वृत्तों की रचना की जा सकती है। अतः शुद्ध वृत्तों का विस्तार 26 अक्षर प्रतिपाद से अधिक नहीं हो सकता। संस्कृतवृत्तों के प्रतिपाद कम-से-कम दो गण या छः अक्षर अनिवार्यतः होते हैं। एक से पाँच अक्षर-वृत्तों का प्रयोग नहीं मिलता, भले ही लक्षणकार इसके उदाहरण गढ़ लें, ये साहित्य में प्रयोज्य नहीं माने जा सकते। यद्यपि वर्णवृत्तों का लक्षण लघु-गुरु के निर्देश कर दिया जा सकता है, किन्तु गणबद्ध वर्णों द्वारा यह कार्य अधिक सरल हो जाता है। अतः परवर्ती लक्षणकारों ने गण-निर्देश द्वारा ही लक्षण दिया है, जिन्हें समझने के लिए गणों का परिचय होना आवश्यक होता है। गणों के सम्बन्ध में छन्दोमञ्जरी का यह पद्य स्मरणीय है–

''मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो
भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरु मध्यगतो रलमध्यः
सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तघुस्तः॥''

पिङ्गलमुनि ने भी छन्दः सूत्र में कहा है–

आदिमध्यावसानेषु
य-र-ता यान्ति लाघवम्।
भ-ज-सा गौरवं यान्ति
मनौ तु गुरु लाघवम्॥ छ०सू० 1/8

1. 'अक्षराण्येव सर्वत्र निमित्तं बलवत्तरम्।'–ऋ० प्राति०
2. कुछ विशेष स्थितियों में लघु वर्ण भी गुरु माने जाते हैं :–
   –द्रष्टव्य प्रथम अध्याय।

समवृत्त-प्रकरण

तनुमध्या

(6 अक्षर)

(त० य०)

तनुमध्या के प्रतिचरण में छः अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक तगण (ऽऽ।) और एक यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'त्यौ चेत्तनुमध्या (छ०मं०)। उदाहरण–**

त० य०

ऽ ऽ । । ऽ ऽ

कान्ता सह माना
दुःखं च्युतभूषा।
रामस्य वियुक्ता
कान्ता सहमाना ॥–भट्टिकाव्य 10/16

शशिवदना

(छः अक्षर)

(न० य०)

शशिवदना के प्रतिचरण में छः अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक नगण (।।।) और एक यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'शशिवदना न्यौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

न० य०

। । । । ऽ ऽ

युवति मणीनां
हरिरमणीनाम्।
सुरभिसमीरो
मदयति चेतः ॥ का० क० 2/35

कुमारललिता

(7 अक्षर)

(ज० स० ग०)

कुमारललिता के प्रतिचरण में सात अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'कुमारललिता ज्सगा (छ० मं०)। उदाहरण–**

ज० स० ग०

।ऽ। ।।ऽ ऽ

यदीयरतिभूमौ
विभातितिलकाङ्कः।
कुमारललितासौ
कुलान्यटति नारी ॥ सा० वै०

मदलेखा

(7 अक्षर)

(म० स० ग०)

मदलेखा के प्रतिचरण में सात अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ) सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'म्सौगः स्यान्मदलेखा (छ० मं०)। उदाहरण–**

म० स० ग०

ऽऽऽ ।।ऽ ऽ

राधाचित्तविकाशी
वृन्दारण्यविलासी।
गोविन्दोऽद्भुतशीलो
व्यातेने मधुलीला ॥ का० क० 2/37

चित्रपदा

(8 अक्षर)

(भ० भ० ग० ग०)

चित्रपदा के प्रतिचरण में आठ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'चित्रपदा यदि भौ गौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

भ० भ० ग० ग०

ऽ।। ऽ।। ऽ ऽ

यस्यमु खेप्रिय व र्णा
चेतसि सज्जनता च।
चित्रपदापि च लक्ष्मी–
स्तं पुरुषं न जहाति ॥ सा०वै०

विद्युन्माला

(8 अक्षर)

(म० म० ग० ग०)

विद्युन्माला के प्रतिचरण में 8 अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है।[3] लक्षण–**''मो मो गो गो विद्युन्माला' (छ० मं०)। उदाहरण–**

म० म० ग० ग०

ऽऽऽ ऽऽऽ ऽ ऽ

वासोवल्ली विद्यु न्मा ला
बर्हश्रेणी शाक्रश्चापः।
यस्मिन् स स्तात्तापोच्छित्यै
गोमध्यस्थः कृष्णाम्भोदः ॥ छ० मं०

3. श्रुतबोध में इसमें चार अक्षर पर यति कही गयी है।

गजगति

(8 अक्षर)

(न० भ० ल० ग०)

गजगति के प्रतिचरण में आठ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), भगण (ऽ।।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'नभलगा गजगति (छ० मं०)। उदाहरण–**

न० भ० ल० ग०
। । । ऽ । । । ऽ
अवतु वोगिरि सु ता
शशि भृतः प्रियतमा।
वसतु मे हृदि सदा
भगवतः पद्युगम् ॥ छ० मं०

प्रमाणिका[4]

(8 अक्षर)

(ज० र० ल० ग०)

प्रमाणिका के प्रतिचरण में आठ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें [5] यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'प्रमाणिका जरौ लगौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

ज० र० ल० ग०
।ऽ। ऽ । ऽ । ऽ
निरीक्ष्य कौसुमा क रीं
श्रियं कलिन्दजातटे।
हरिः प्रियास्यपङ्कजे
व्यलिम्पदासुकुङ्कुमम् ॥ का० क० 2/40

समानिका

(8 अक्षर)

(र० ज० ग० ल०)

समानिका के प्रतिचरण में आठ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) एवं एक लघु (।) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'गूलौ रजौ समानिकातु (छ० मं०)। उदाहरण–**

र० ज० ग० ल०
ऽ ।ऽ ।ऽ। ऽ ।
ओंनमो जनार्दना य
पापसङ्घमोचनाय।
दुष्टदैत्य मर्दनाय
पुण्डरीकलोचनाय ॥ वृ० र०

---

4. श्रुतबोध में इसका नामान्तर 'नगस्वरूपिणी' मिलता है।
5. कुछ विद्वान् इसमें चार अक्षरों पर यति मानते हैं।

माणवक

(8 अक्षर)

(भ० त० ल० ग०)

माणवक के प्रतिचरण में आठ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'भात्तलगा माणवकम् (छ० मं०)। उदाहरण–**

भ० त० ल० ग०

ऽ।। ऽऽ। । ऽ

चञ्चल चूडंच प लै–
र्वत्सकुलैः केलिपरम्।
ध्यायसखे स्मेरमुखं
नन्दसुतं माणवकम् ॥ छ० मं०

भुजगशिशुभृता

(9 अक्षर)

(न० न० म०)

भुजगशिशुभृता के प्रतिचरण में नौ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) और एक मगण (ऽऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'भुजगशिशुभृता नौ मः (वृ० र०)। उदाहरण–**

न० न० म०

।।।।।।ऽऽऽ

दिनकर दुहितुः कूले
सुरभिपरिगतावन्या।
व्रजयुवतिरतिस्थाने
न किमभवदहो धन्या ॥ का० क० 2/42

हलमुखी

(9 अक्षर)

(र० न० स०)

हलमुखी के प्रतिचरण में नौ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) और सगण (।।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'रान्नसाविह हलमुखी (वृ० र०)। उदाहरण–**

र० न० स०

ऽ।ऽ।।।।।ऽ

गण्डयोरतिशयकृशं
यन्मुखं प्रकटदशनम्।
आयतं कलहनिरतं
तां स्त्रियं त्यज हलमुखीम् ॥ छ० सू० 6/14

भुजङ्गसङ्गता

(9 अक्षर)

(स० ज० र०)

भुजङ्गसङ्गता के प्रतिचरण में नौ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'सजरैर्भुजङ्गसङ्गता (छ० मं०)। उदाहरण–**

स०	ज०	र०
।।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ

तरला तरङ्ग रिङ्गतै–
र्यमुना भुजङ्गसङ्गता।
कथमेति वत्सचारक–
श्चपलः सदैव तां हरिः॥ छं० मं०

मणिमध्य

(9 अक्षर)

(भ० म० स०)

मणिमध्य के प्रतिचरण में नौ अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः भगण (ऽ।।), मगण (ऽऽऽ) और सगण (।।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'स्यान्मणिमध्यं चेद्भमसाः (छ० मं०)। उदाहरण–**

भ०	म०	स०
ऽ।।	ऽऽऽ	।।ऽ

कालियभोगाभोगगत–
स्तन्मणिमध्यष्फीतरुचा।
चित्रपदाभो नन्दसुत–
श्चारु ननर्त स्मेरमुखः॥ छं० मं०

रुक्मवती[6]

(10 अक्षर)

(भ० म० स० ग०)

रुक्मवती के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः भगण (ऽ।।), मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति[7] पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'रुक्मवती सा यत्र भमस्गाः (छ० मं०)। उदाहरण–**

6. श्रुतबोध में इसका नामान्तर 'चम्पकमाला' दिया गया है।
7. कुछ विद्वान् इसमें 5-5 अक्षरों पर यति मानते हैं।

भ० म० स० ग०

ऽ।। ऽऽऽ ।।ऽ ऽ

बल्लवबालानन्दकुमारं
मारमनोज्ञाकारमुपेतम् ।
वीक्ष्यवितेनुर्विभ्रमभाजः
स्वामिमताः स्वैरं स्मरकेली: ।। का० क० 2/44

मनोरमा

(10 अक्षर)

(न० र० ज० ग०)

मनोरमा के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है.। लक्षण–**'नरजगै र्भवेत् मनोरमा (छ० मं०) । उदाहरण–**

न० र० ज० ग०

।।। ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ

तरणिजातटे विहारिणी
व्रजविलासिनी विलासतः ।
मुररिपोस्तनुः पुनातु वः
सुकृतशालिनां मनोरमा ।। छ० मं०

त्वरितगति

(10 अक्षर)

(न० ज० न० ग०)

त्वरितगति के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), जगण (।ऽ।), नगण (।।।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'त्वरितगतिश्च नजनगैः (छ० मं०) । उदाहरण–**

न० ज० न० ग०

।।। ।ऽ। ।।। ऽ

त्वरितगति र्व्रजयुवति–
स्तरणिसुताविपिनगता ।
मुररिपुणा रतिगुरुणा
सह मिलिता प्रमदमिता ।। छ० मं०

मत्ता

(10 अक्षर)

(म० भ० स० ग०)

मत्ता के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'ज्ञेया मत्ता मभसगसृष्टा (छ० मं०) । उदाहरण–**

म०	भ०	स०	ग०
ऽऽऽ	ऽ।।	।।ऽ	ऽ

पीत्वापी त्वामधु मधुपा ली
कालिन्दीये तटवनकुञ्जे ।
उद्दीव्यन्ती व्रजजनरामाः
कामासक्ता मधुजिति चक्रे ।। छ० मं०

उपस्थिता

(10 अक्षर)

(त० ज० ज० ग०)

उपस्थिता के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक तगण (ऽऽ।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'त्जौ जो गुरुणेयमुपस्थिता (वृ० र०)। उदाहरण–**

त	ज०	ज०	ग०
ऽऽ।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ

एषाज गदेक मनोह रा
कन्या कनकोज्ज्वलदीधितिः ।
लक्ष्मीरिव दानवसूदनं
पुण्यैर्नरनाथमुपस्थिता ।। छ० सू० 6/20

मयूरसारिणी

(10 अक्षर)

(र० ज० र० ग०)

मयूरसारिणी के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'जौं रगौ मयूरसारिणी स्यात् (वृ० र०)। उदाहरण–**

र०	ज०	र०	ग०
ऽ । ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

या वनान्तराण्युपैति रन्तुं
या भुजङ्गभोगभुक्तचित्ता ।
या द्रुतं प्रयाति सन्नतांसा
तां मयूरसारिणीं विजह्यात् ।। छ० सू० 6/18

पणव

(10 अक्षर)

(म० न० य० ग०)

पणव के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'म्नौय्गौचेति पणवनामेदम्' (वृ० र०)। उदाहरण–**

म०	न०	य०	ग०
ऽ ऽ ऽ	। । ।	। ऽ ऽ	ऽ

मीमांसारसममृतं पीत्वा
शास्त्रोक्तिः पटुरितरा भाति ।
एवं संसदि विदुषां मध्ये
जल्पामो जयपणबन्धत्वात् ।। छ० सू० 6/16

शुद्धविराट्

(10 अक्षर)

(म० स० ज० ग०)

शुद्धविराट् के प्रतिचरण में दस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'म्सौ ज्गौ शुद्धविराडिदं मतम्' (वृ० रं०)। उदाहरण–**

म०	स०	ज०	ग०
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	ऽ

अद्धामा धवरा गरश्मि ना
बद्धा बल्लववालिका व्रजे ।
श्रद्धाऽराद्धहरप्रिया मधौ
तद्धामापुरतित्वरा वनम् ।। का०क०

इन्द्रवज्रा

(11 अक्षर)

(त० त० ज० ग० ग०)

इन्द्रवज्रा के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) और दो गुरु (ऽ,ऽ) होते हैं। इसमें यति*[8] पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' (छ० मं०)। उदाहरण–**

त०	त०	ज०	ग०	ग०
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ	ऽ

दृष्टाव दानाद्व्य थतेऽरि लो कः
प्रध्वंसमेति व्यथिताच्च तेजः ।
तेजोविहीनं विजहाति दर्पः
शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः ।। कि० 17/16

8. कुछ विद्वान् इसमें 5 और 6 अक्षरों पर यति मानते हैं।

उपेन्द्रवज्रा [9]

(11 अक्षर)

(ज० त० ज० ग० ग०)

उपेन्द्रवज्रा के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।) तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' (वृ० र०)। उदाहरण–**

ज०	त०	ज०	ग०	ग०
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ	ऽ

यशोऽधि गन्तुंसु खलिप्स या वा
मनुष्यसंख्यामतिवर्तितुं वा
निरुत्सुकानामभियोगभाजां
समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः ॥ कि० 3/40

शालिनी

(11 अक्षर)

(म० त० त० ग० ग०)

शालिनी' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक मगण (ऽऽऽ), दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति 4 तथा 7 अक्षरों पर होती है। लक्षण–**'मात्तौ गौचेच्छालिनी वेदलोकैः (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	त०	त०	ग०	ग०
ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ	ऽ

कः कं श क्तोरक्षि तुंमृत्यु का ले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ स्वप्न० 6/10

वातोर्मि

(11 अक्षर)

(म० भ० त० ग० ग०)

वातोर्मि' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'वातोर्मीयं गदिता म्भौ तगौ गः' (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	भ०	त०	ग०	ग०
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	ऽ ऽ ।	ऽ	ऽ

ध्याताम् र्तिःक्षण मप्यच्यु त स्य
श्रेणीं नाम्नां गदिता हेलयापि।
संसारेऽस्मिन् दुरितं हन्ति पुंसां
वातोर्मिः पोतमिवाम्भोधिमध्ये ॥ छ० मं०

---

9. "उपेन्द्रवज्राचरणः प्रयाति यत्रेन्द्रवज्राचरणे योगम्" अर्थात्। जब वृत्त के चरण इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा के लक्षणों से युक्त हो तो उस वृत्त का नाम–उपजाति (इन्द्रोपेन्द्रवज्रा) है। द्रष्टव्य (प्रथम अध्याय)

सुमुखी

(11 अक्षर)

(न० ज० ज० ल० ग०)

सुमुखी' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति[10] पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'नजजलगैर्गदिता सुमुखी' (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	ज०	ज०	ल०	ग०
।।।	।ऽ।	।ऽ।	।	ऽ

सुरभि निशासु मनोज स ख–
स्तुहिनकर प्रकरेण शशी।
विरहकृशापघनान् विभृशन्
क्षपितकृपः परितापयते॥ का० क० 2/51

रथोद्धता

(11 अक्षर)

(र० न० र० ल० ग०)

रथोद्धता' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'रात्परैर्नरलगै रथोद्धता (छ० मं०)। उदाहरण–**

र०	न०	र०	ल०	ग०
ऽ।ऽ	।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

वीतजन्मरजसं परं शुचि
ब्रह्मणः पदमुपैतुमिच्छताम्।
आगमादिव तमोपहादितः
सम्भवन्ति मतयो भवच्छिदः॥ कि० 5/22

स्वागता

(11 अक्षर)

(र० न० भ० ग० ग०)

स्वागता' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'स्वागता रनभगैर्गुरुणा च' (छ० मं०)। उदाहरण–**

र०	न०	भ०	ग०	ग०
ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

वीक्ष्यर न्तुमन सःसुर ना री–
रात्तचित्रपरिधानविभूषाः।
तत्प्रियार्थमिव यातुमथास्तं
भानुमानुपपयोधि ललम्बे॥ कि० 9/1

10. कुछ विद्वान् पाँचवें वर्ण पर भी यति मानते हैं।

अनुकूला[11]

(11 अक्षर)

(भ० त० न० ग० ग०)

अनुकूला' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**स्यादनुकूलाभतनगगाश्चेत्' (छ० मं०)। उदाहरण–**

भ०	त०	न०	ग०	ग०
ऽ।।	ऽऽ।	।।।	ऽ	ऽ

सौरभ भारश्ल थगति वे गो
वातिवसन्ते मलयसमीरः।
गुञ्जतिभृङ्गः स्फुटतरुशृङ्गे
तन्वि कथं ते प्रभवतु मानः॥ का० क० 2/54

श्येनी

(11 अक्षर)

(र० ज० र० ल० ग०)

श्येनी' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'श्येन्युदीरितारजौ रलौ गुरुः (छ० मं०)। उदाहरण–**

र०	ज०	र०	ल०	ग०
ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	।	ऽ

कन्दुकप्रचालनेन चञ्चला
कामिनी प्रभानिरस्त चञ्चला।
वीक्षणेनमाधवे मदालसं
कामिनां वशीचकार मानसम्॥ का० क० 2/60

भद्रिका

(11 अक्षर)

(न० न० र० ल० ग०)

भद्रिका' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।), एक रगण (ऽ।ऽ), और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'ननरलगुरुभिश्च भद्रिका' (वृ० र०)। उदाहरण–**

न०	न०	र०	ल०	ग०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

भवति वियति भूरिभा स्क रे
भवति समयता सुधाकरे
कुपितमधिकमेक्ष्य मानवं
मृदुतनुमुपयाति तानवम्॥ सा० वै०

---

11. वृत्तरत्नाकर में इसका नामान्तर 'श्री' तथा 'मौक्तिकमाला' मिलता है।

वृन्ता

(11 अक्षर)

(न० न० स० ग० ग०)

वृन्ता' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।), एक सगण (।।ऽ), और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति[12] पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'ननसगगुरुरचिता वृन्ता' (वृ० र०)। उदाहरण–**

न०	न०	स०	ग०	ग०
।।।	।।।	।।ऽ	ऽ	ऽ

मधुप! वचसि नमनो द त्से
मधुनि मधुनि मुखमाधत्से
प्रियवर! मम कथये: सत्यं
कुत इदमधिगतमौद्धत्यम् ॥ सा० वै०

भ्रमरविलसिता[13]

(11 अक्षर)

(म० भ० न० ल० ग०)

भ्रमरविलसिता' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**म्भौ न्लौ ग स्याद्भ्रमरविलसिता (वृ० र०)।**
उदाहरण–

म०	भ०	न०	ल०	ग०
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	।	ऽ

प्रीत्यैयू नांव्यव हितत प नाः
प्रौढध्वान्तं दिनमिहजलदाः।
दोषामन्यं विदधति सुरत–
क्रीडायासश्रमशमपटवः ॥ शिशु० 4/62

दोधक

(11 अक्षर)

(भ० भ० भ० ग० ग०)

दोधक' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः तीन भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।), और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'दोधकमिच्छति भत्रितयाद् गौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

भ०	भ०	भ०	ग०	ग०
ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

यानय यौप्रिय मन्यव धू भ्यः
सा रतरागमनायतमानम्।
तेन सदेह बिभर्त्ति रहः स्त्री
सा रतरागमनायतमानम् ॥ शिशु० 4/45

12. कुछ विद्वान् इसमें 4 तथा 7 अक्षरों पर यति मानते हैं।
13. कहीं-कहीं भ्रमरविलसित' पाठ मिलता है।

मोटनक[14]

(11 अक्षर)

(त० ज० ज० ल० ग०)

मोटनक' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक तगण (ऽऽ।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'स्यान्मोटनकं तजजाश्च लगौ' (छ० मं०)। उदाहरण–**

त०	ज०	ज०	ल०	ग०
ऽऽ।	।ऽ।	।ऽ।	।	ऽ

रङ्गेख लुमल्ल कलाकु श ल
श्चाणूरमहाभटमोटनकम् ।
यः केलिलवेन चकार स मे
संसाररिपुं परिमोटयतु ।। छ० मं०

विलासिनी

(11 अक्षर)

(ज० र० ज० ग० ग०)

विलासिनी' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'विलासिनी ज्रौ ज्गौग् (छ० शा०। उदाहरण–**

ज०	र०	ज०	ग०	ग०
।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ	ऽ

विलासि नीविलो कितःस का मी
दधाति कामसत्त्वचेष्टितं या ।
करोति चञ्चलाक्षि दृष्टिपातैः
यतात्मनश्च योगिनोऽपि मत्तान् ।। छ० सू० 6/32

लयग्राहि[15]

(11 अक्षर)

(त० त० त० ग० ग०)

लयग्राहि' के प्रतिचरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः तीन तगण (ऽऽ।, ऽऽ।, ऽऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) **होते हैं।** इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'प्राकारबन्धस्तकारत्रयं गौ (वा० व)। उदाहरण–**

त०	त०	त०	ग०	ग०
ऽऽ।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ	ऽ

वीणानि नादानु बन्धेन ह द्यं
काञ्चीरणत्कार चित्रीयमाणम्
नव्याङ्गहार प्रकाराभिरामं
दत्ते प्रमोदं लयग्राहि लास्यम् ।। छन्दोऽनु० 2/129.1

14. इसका नामान्तर 'मोटन' मिलता है।

15. इसका नामान्तर 'प्राकारबन्ध' तथा 'विघ्नङ्गमाला' मिलता है।

वंशस्थ[16]

(12 अक्षर)

(ज० त० ज० र०)

वंशस्थ' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ' (छ० मं०)। उदाहरण–**

ज०	त०	ज०	र०
।ऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ

निरत्य यंसाम नदान वर्जितं
न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी
गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया ॥ कि० 1/12

इन्द्रवंशा

(12 अक्षर)

(त० त० ज० र०)

इन्द्रवंशा' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'स्यादिन्द्रवंशा ततजैरसंयुतैः (वृ० र०)। उदाहरण–**

त०	त०	ज०	र०
ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ

भङ्क्त्वा वनं पादपरत्न संकुलं
हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं
तस्थौ हनूमान् पवनात्मजः कपिः ॥ वा० रा० सु० 55/44

जलोद्धतगति

(12 अक्षर)

(ज० स० ज० स०)

जलोद्धतगति' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और सगण (।।ऽ) होते हैं। इसमें यति[17] पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'जसौजसयुतौजलोद्धतगतिः (छ० मं०)। उदाहरण–**

ज०	स०	ज०	स०
।ऽ।	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ

सनाकवनितं नितम्बरुचिरं
चिरं सुनिनदै र्नदैर्वृतममुम्।

16. इसका नामान्तर 'वंशस्था' या 'वंशस्तनित' मिलता है। 'वंशस्थ' एवं इन्द्रवंशा वृत्त के मिश्रण से चौदह प्रकार की उपजाति होती है। इसके नाम हैं–1. वरासिका, 2. रताख्यानकी, 3. इन्दुमा, 4. पुष्टिदा, 5. उपमेया, 6. सौरमेयी, 7. शीलातुरा, 8. वासन्तिका, 9. मन्दहासा, 10. शिशिरा, 11. वैधात्री, 12. शङ्खचूडा, 13. रमणा तथा 14. कुमारी।
17. कुछ विद्वान् इसमें छः, छः अक्षरों पर यति मानते हैं।

मता फणवतोऽवतो रसपरा–
परास्तवसुधा सुधाधिवसति ॥ कि० 5/27

वैश्वदेवी

(12 अक्षर)

(म० म० य० य०)

वैश्वदेवी' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ), और दो यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाँच तथा सात अक्षरों पर होती है। लक्षण–**'बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	म०	य०	य०
ऽऽऽ	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

कार्यैनै वार्थैर्ना पिभोगै र्नवस्त्रै–
र्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्म प्रचारा
शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ स्वप्न०. 1/9

मालती

(12 अक्षर)

(न० ज० ज० र०)

मालती' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'भवति नजावथ मालती जरौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	ज०	ज०	र०
।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ

सुरभि रभीर नतभ्रु वाप्रिया–
स्तवकनता चतुरालिसेविता।
भवतु घन प्रमदाय सर्वदा
मृदुलतमा मम कापि मालती ॥ का० क० 555

कामदत्ता[18]

(12 अक्षर)

(न० न० र० य०)

कामदत्ता' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।), एक रगण (ऽ।ऽ) और एक यगण (।ऽऽ) होतें हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**नौ र्यौ कामदत्ता। छन्दोऽनु० 2/254। उदाहरण–**

न०	न०	र०	य०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।ऽऽ

निकृतिकलुष याधिया वितीर्णं
बहुतरमपि निष्फलत्वमेति।
सुकृतममृतकारणं प्रसूते
ध्रुवमिह कणिकापि कामदत्ता ॥ छन्दोऽनु० 2/187.1

18. इसका नामान्तर 'काममत्ता' मिलता है।

जलधरमाला[19]

(12 अक्षर)

(म० भ० स० म०)

जलधरमाला' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ) और मगण (ऽऽऽ) होते हैं। इसमें यति चार तथा आठ अक्षरों पर होती है। लक्षण– **'मोभः स्मौ चेज्जलधरमालाऽब्ध्यन्त्यैः (छ० मं०)। उदाहरण–**

म० भ० स० म०

ऽऽऽ ऽ।। ।।ऽ ऽऽऽ

दिव्यस्त्रीणांसच रणला क्षारागा
रागायाते निपतितपुष्पापीडाः।
पीडाभाजः कुसुमचिताः साशंसं
शंसन्त्यस्मिन्सुरतविशेषं शय्याः॥ कि० 5/23

प्रभा[20]

(12 अक्षर)

(न० न० र० र०)

प्रभा' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) और दो रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति सात तथा पाँच अक्षरों पर होती है। लक्षण– **'स्वरशरविरति र्ननौरौ प्रभा (वृ० र०)। उदाहरण–**

न० न० र० र०

।।।।।। ऽ।ऽ ऽ।ऽ

अखिलमिदममुष्य गौरीगुरो–
स्त्रिभुवनमपि नैति मन्ये तुलाम्।
अधिवसति सदा यदेनं जनै–
रविदितविभवो भवानीपतिः॥ कि० 5/21

कुसुमविचित्रा

(12 अक्षर)

(न० य० न० य०)

कुसुमविचित्रा' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), नगण (।।।) और यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति[21] पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'नयसहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा (छ० मं०)। उदाहरण–**

न० य० न० य०

।।।।ऽऽ।।।।ऽऽ

विपिनविहारे कुसुमविचित्रा
कुतुकितगोपीमहितचरित्रा।
मुररिपुमूर्त्तिर्मुखरितवंशा
चिरमवताद्वस्तरलवतंसा॥ छ० मं०

19. इसका नामान्तर 'कान्तोत्पीडा' मिलता है।
20. इसका नामान्तर 'मन्दाकिनी' चञ्चलाक्षिका 'प्रमुदितवदना' आदि मिलता है।
21. कुछ विद्वान् इसमें छः, छः अक्षरों पर यति मानते हैं।

प्रमिताक्षरा

(12 अक्षर)

(स० ज० स० स०)

प्रमिताक्षरा' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'प्रमि ताक्षरा सजससैः कथिता (छ० मं०)। उदाहरण–**

स०	ज०	स०	स०
।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।।ऽ

सुलभैः सदानयवताऽयवता
निधिगुह्यकाधिपरमैः परमैः।
अमुना धनैः क्षितिभृतातिभृता
समतीत्य भाति जगती जगती॥ कि० 5/20

मणिमाला

(12 अक्षर)

(त० य० त० य०)

मणिमाला' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः तगण (ऽऽ।), यगण (।ऽऽ), तगण (ऽऽ।) और यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति 6-6 अक्षरों पर होती है। लक्षण–**'त्यौ त्यौ मणिमाला छिन्ना गुहवक्त्रैः (छ० मं०)।। उदाहरण–**

त०	य०	त०	य०
ऽऽ।	।ऽऽ	ऽऽ।	।ऽऽ

प्रह्वामरमौलौ रत्नोपलक्लृप्ते
जातप्रतिबिम्बा शोणा मणिमाला।
गोविन्दपदाब्जे राजी नखराणा–
मास्तां मम चित्ते ध्वान्तंशमयन्ती॥ छ० मं०

द्रुतविलम्बित

(12 अक्षर)

(न० भ० भ० र०)

द्रुतविलम्बित' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक नगण (।।।), दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	भ०	भ०	र०
।।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।ऽ

अनुच रेणध नाधिप तेरथो
नगविलोकनविस्मितमानसः।
स जगदे वचनं प्रियमादरा–
न्मुखरताऽवसरे हि विराजते॥ कि० 5/16

भुजङ्गप्रयात

(12 अक्षर)

(य० य० य० य०)

भुजङ्गप्रयात' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः चार यगण (ISS, ISS, ISS, ISS) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः' (छ० मं०)। उदाहरण–**

य०	य०	य०	य०
ISS	ISS	ISS	ISS

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम्।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकारमाकाशवासं भजेऽहम्॥ बृ० स्तो० र०

स्त्रग्विणी[22]

(12 अक्षर)

(र० र० र० र०)

स्त्रग्विणी' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः चार रगण (SIS, SIS, SIS, SIS) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'कीर्तितैषा चतूरेफिणी स्त्रग्विणी (छ० मं०)। उदाहरण–**

र०	र०	र०	र०
SIS	SIS	SIS	SIS

वर्जय न्त्याजनैः सङ्गमे कान्तत–
स्तर्कयन्त्या मुखं सङ्गमेकान्ततः।
योषयैष स्मरासन्नतापाङ्गया
सैव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्गया॥ शिशु० 4/42

तोटक

(12 अक्षर)

(स० स० स० स०)

तोटक' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः चार सगण (IIS, IIS, IIS, IIS) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'वद तोटकमब्धिसकारयुतम् (छ० मं०)। उदाहरण–**

स०	स०	स०	स०
IIS	IIS	IIS	IIS

अथभी मभुवै व्ररहो ऽभिहितां
नतमौलिरपत्रपया स निजाम्।
अमरैः सह राजसमाजगतिं
जगतीपतिरभ्युपगम्य ययौ॥ नै० 9/157

22. इसके नामान्तर 'पद्मिनी', लक्ष्मीधरम्, लक्ष्मीधरा, शृंगारिणी, कामिनीमोहन आदि मिलते हैं।

पुट

(12 अक्षर)

(न० न० म० य०)

पुट' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) एक मगण (ऽऽऽ) और एक यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति आठ तथा चार अक्षरों पर होती है। लक्षण–**'वसुयुगविरति नौ म्यौ पुटोऽयम्' (वृ० र०)**। उदाहरण–

न०	न०	म०	य०
।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ

नविच लतिक थञ्चित्न्या यमार्गात्
वसुनि शिथिलमुष्टिः पार्थिवो यः।
अमृतपुट इवासौ पुण्यकर्मा
भवति जगति सेव्यः सर्वलोकैः ॥ छ० सू० 6/38

नवमालिनी

(12 अक्षर)

(न० ज० भ० य०)

नवमालिनी' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।) और यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है।[23] लक्षण–**इह नवमालिनी नजपरौ भ्यौ (वृ० र०)**। उदाहरण–

न०	ज०	भ०	य०
।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽऽ

धवल यशोऽशु केनप रिवीता
सकलजनानुराग घुसृणाक्ता।
दृढ़गुणबद्धकीर्त्तिकुसुमौघै–
स्तव नवमालिनीव नृप! लक्ष्मीः ॥ छ० सू० 6/49

तामरस

(12 अक्षर)

(न० ज० ज० य०)

तामरस' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'इह वद तामरसं नजजा यः' (छ० मं०)**। उदाहरण–

न०	ज०	ज०	य०
।।।	।ऽ।	।ऽ।	।ऽऽ

स्फुटसुषमामकरन्दमनोज्ञं
व्रजललनानयनालिनिपीतम्।
तव मुखतामरसं मुरशत्रो!
हृदयतडागविकाशि ममास्तु ॥ छ० मं०

---

23. कुछ विद्वान् इसमें चार तथा आठ अक्षरों पर यति मानते हैं।

प्रियंवदा

(12 अक्षर)

(न० भ० ज० र०)

प्रियंवदा' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–'**भुवि भवेन्नभजरैः प्रियंवदा (वृ० र०)। उदाहरण–**

न०	भ०	ज०	र०
।।।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।ऽ

भ्रमव शात्कुच रितैःपु राकृतै–
र्यदि हरे ! परिहरेरिमं जनम्।
वद तदा क्व फलिता मनस्विता
गुणनिधे ! क्व च कृता कृपालुता ।। सा० वै०

चन्द्रवर्त्म

(12 अक्षर)

(र० न० भ० स०)

चन्द्रवर्त्म' के प्रतिचरण में बारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), भगण (ऽ।।) और सगण (।।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है।[24] लक्षण–**चन्द्रवर्त्म निगदन्ति रनभसः' (छ० मं०)। उदाहरण–**

र०	न०	भ०	स०
ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	।।ऽ

किंशुकंस्तवकितं व्रजललना
मन्मथेषुधिमवेत्य विधृतयः।
नन्दसूनुमभिसृत्य सरभसं
मानमाततमपि स्वयमजहुः ।। का० क० 2/61

प्रहर्षिणी[25]

(13 अक्षर)

(म० न० ज० र० ग०)

प्रहर्षिणी' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 3 तथा 10 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–'**म्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	न०	ज०	र०	ग०
ऽऽऽ	।।।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छयाविसोढः
दुःखाग्नि र्मनसि पुनर्विपच्यमानो
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति ।। उ०रा०च० 1/30

24. कुछ विद्वान् इसमें 4 तथा 8 अक्षरों पर यति मानते हैं।
25. इसका नामान्तर 'मयूरपिच्छ' मिलता है।

मंजुभाषिणी[26]

(13 अक्षर)

(स० ज० स० ज० ग०)

मंजुभाषिणी' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति[27] पाद के अन्त में होती है। लक्षण—**'सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी (छ० मं०)**। **उदाहरण**—

स० ज० स० ज० ग०

।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।ऽ। ऽ

गिरिगह्वरेषु गुरुगर्वगुम्फितो
गजराजपोत न कदापि सञ्चरेः।
यदि बुध्यते हरिशिशुः स्तनन्धयो
भविता करेणु परिशेषिता मही ॥ भा० वि० 1/53

प्रभावती

(13 अक्षर)

(त० भ० स० ज० ग०)

प्रभावती' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः तगण (ऽऽ।), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें चार तथा नौ अक्षरों पर यति होती है। लक्षण—**'उक्ता यदा तभसजगाः प्रभावती (वा० व०)**। **उदाहरण**—

त० भ० स० ज० ग०

ऽऽ। ऽ।। ।।ऽ ।ऽ। ऽ

देवाःस दापशु पतिरि न्दुशेखरा
गङ्गाधरो हिमगिरिकन्यकापतिः।
वाराणसीपुरपतिरार्त्तभीतिहृत्
पायात्परं विषमशरारिराशु माम् ॥ श्रुत० बो०

चण्डी[28]

(13 अक्षर)

(न० न० स० स० ग०)

चण्डी' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।), दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ) और एक गुरु होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण—**'नयुगलसयुगलगैरिति चण्डी (छ० मं०)**। **उदाहरण**—

न० न० स० स० ग०

।।। ।।। ।।ऽ ।।ऽ ऽ

जयति दितिजरिपुताण्डवलीला

26. इसके 'सुनन्दिनी 'मनोवती' प्रबोधिता 'ज्या' कनकप्रभा सुमङ्गली' आदि नामान्तर मिलते हैं।
27. कुछ विद्वान् इसमें 5 तथा 8 अक्षरों पर यति मानते हैं।
28. इसका नामान्तर 'हाकलिका' मिलता है।

कुपितकवलकरकालियमौलौ ।
चरण कमलयुगचापलचण्डी
पदनखरुचिजितभोगमणिश्रीः ॥ छ० मं०

रुचिरा[29]

(13 अक्षर)

(ज० भ० स० ज० ग०)

रुचिरा' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 4 तथा 9 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण– **'जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः' (छ० मं०)। उदाहरण–**

ज०	भ०	स०	ज०	ग०
।ऽ।	ऽ।।	।।ऽ	।ऽ।	ऽ

ससम्भ्र मंचरणतलाभिताडन–
स्फुटन्महीविवर वितीर्णवर्त्मभिः ।
रवेः करैरनुचिततापितोरगं
प्रकाशतां शिनिरनयद्रसातलम् ॥ शिशु० 17/15

चन्द्रिका[30]

(13 अक्षर)

(न० न० त० त० ग०)

चन्द्रिका' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।), दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 7 तथा 6 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**ननततगुरुभिश्चन्द्रिकाश्वर्तुभिः (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	न०	त०	त०	ग०
।।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ

इह दुरधिग मैःकिञ्चिदेवाग मैः
सततमसुतरं वर्णयन्त्यन्तरम्
अमुमतिविपिनं वेददिग्व्यापिनं
पुरुषमिव परं पद्मयोनिः परम् ॥ कि० 5/18

कलहंस

(13 अक्षर)

(स० ज० स० स० ग०)

कलहंस' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'सजसा सगौ च कथितः कलहंसः' (छ० मं०)। उदाहरण–**

---

29. इसका नामान्तर 'प्रभावती' या 'कलावती' मिलता है।

30. इसके 'क्षमा' कुटिलगति' सिंहनाद' 'उत्पलिनी' 'कुटज' आदि नामान्तर मिलते हैं।

स०	ज०	स०	स०	ग०
।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।।ऽ	ऽ

कुटजा निवीक्ष्य शिखिभिः शिखरीन्द्रं
समयावनौ घनमदभ्रमराणि ।
गगनं च गीतनिनदस्य गिरौच्चैः
समयावनौ घनमदभ्रभराणि ।। शिशु० 6/73

मत्तमयूर

(13 अक्षर)

(म० त० य० स० ग०)

मत्तमयूर' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), यगण (।ऽऽ), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 4 तथा 9 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'वेदैरन्ध्रैम्तौं यसगामत्तमयूरम्' (छ० मं०)**। **उदाहरण–**

म०	त०	य०	स०	ग०
ऽऽऽ	ऽऽ।	।ऽऽ	।।ऽ	ऽ

दृष्ट्वादृ श्यान्याच रणीया निविधा य
प्रेक्षाकारी याति पदं मुक्तमपायैः ।
सम्यग्दृष्टिस्तस्य परं पश्यति यस्त्वां
यश्चोपास्ते साधु विधेयं स विधत्ते ।। कि० 18/28

मृगेन्द्रमुख

(13 अक्षर)

(न० ज० ज० र० ग०)

मृगेन्द्रमुख' के प्रतिचरण में तेरह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) एक रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'भवति मृगेन्द्रमुखं नजौ जरौ गः (छ० मं०)**। **उदाहरण--**

न०	ज०	ज०	र०	ग०
।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये
यदि च कृतां हि तवेच्छसि प्रतिज्ञाम् ।
यदि तव राजसुताभिलाष आर्य
कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर ।। वा०रा०यु० 101/56

वसन्ततिलका[31]

(14 अक्षर)

(त० भ० ज० ज० ग० ग०)

वसन्ततिलका' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः तगण (SSI), भगण (SII), दो जगण (ISI, ISI) और दो गुरु (S, S) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः (छ० मं०)। उदाहरण–**

त०	भ०	ज०	ज०	ग०	ग०
SSI	SII	ISI	ISI	S	S

प्रारभ्य तेनख लुविघ्न भयेन नी चैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ भ० नी० श० 27

कुररीरुता

(14 अक्षर)

(न० ज० भ० ज० ल० ग०)

कुररीरुता' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (III), जगण (ISI) भगण (SII) जगण (ISI) और एक लघु (I) एवं एक गुरु (S) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'कुररीरुता नजभजैर्लगयुक् (मल्लिनाथ)। उदाहरण–**

न०	ज०	भ०	ज०	ल०	ग०
III	ISI	SII	ISI	I	S

अनति चिरोज्झि तस्यज लदेन चि र
स्थितबहुबुद्बुदस्य पयसोऽनुकृतिम्।
विरलविकीर्णवज्रशकला सकला–
मिहविदधाति धौतकलधौत मही ॥ शिशु० 4/41

पथ्या

(14 अक्षर)

(स० ज० स० य० ल० ग०)

पथ्या' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः सगण (IIS), जगण (ISI), सगण (IIS), यगण (ISS) और एक लघु (I) एवं एक गुरु (S) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'सजसा यलौ च सह गेन पथ्या मता (मल्लिनाथ)। उदाहरण–**

---

31. ''सिंहोन्नतेयमुदिता मुनिकाश्यपेन उद्धर्षिणीति गदिता मुनिसैतवेन।
रामेण सेयमुदिता मधुमाधवीति प्रोक्ता तथैव भरतेन च सुन्दरीति ॥ वा० व०
अर्थात् इसी वसन्ततिलका का नाम मुनिकाश्यपने सिंहोन्नता, मनिसैतवने उद्धर्षिणी, राम ने मधुमाधवी तथा भरत ने सुन्दरी कहा है।

स०	ज०	स०	य०	ल०	ग०
।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।ऽऽ	।	ऽ

स्थगयन्त्यमूःश मितचा तकार्त्त स्व रा
जलदास्तडित्तुलितकान्तकार्त्तस्वराः ।
जगतीरिहस्फुरितचारुचामीकराः
सवितुः क्वचित्कपिशयन्ति चामीकराः ।। शिशु० 4/24

प्रहरणकलिका

(14 अक्षर)

(न० न० भ० न० ल० ग०)

प्रहरणकलिका' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।), एक भगण (ऽ।।), एक नगण (।।।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति[32] पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'ननभनलगिति प्रहरणकलिका (छ० मं०)** । **उदाहरण–**

न०	न०	भ०	न०	ल०	ग०
।।।	।।।	ऽ।।	।।।	।	ऽ

इतिवचनम सौरज निचर प तिं
बहुगुणमसकृत् प्रसभमभिदधत् ।
निरगमदभयः पुरुषरिपुपुरात्
नरपति चरणौ नवितुमरिनुतौ ।। भट्टिकाव्य 8/31

अपराजिता

(14 अक्षर)

(न० न० र० स० ल० ग०)

अपराजिता' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक सगण (।।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 7-7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'ननरसलघुगैः स्वरैरपराजिता (छ० मं०) उदाहरण–**

न०	न०	र०	स०	ल०	ग०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

शशध रवद नंकुशे शयलोच नं
शुचिरुचिरुचिरं ललाटतटस्थितम् ।
विशदकरुणयाधिवासितमृद्धयो
जिनमनुसरतां भवन्त्यपराजिताः ।। छन्दोऽनु 2/200

32. कुछ विद्वान् इसमें 7-7 अक्षरों पर यति मानते हैं।

वासन्ती

(14 अक्षर)

(म० त० न० म० ग० ग०)

वासन्ती' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), मगण (ऽऽऽ) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'मात्तो नो मो गौ यदि गदिता वासन्तीयम् (छ० मं०)।** उदाहरण–

म०	त०	न०	म०	ग०	ग०
ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	ऽ	ऽ

भ्राम्यद्भृ ङ्गीनिर्भ र म धु रालापो द्गी तैः
श्रीखण्डाद्रेरद्भुतपवनैर्मन्दान्दोला।
लीलालोला पल्लवविलसद्धस्तोल्लासैः
कंसारातौ नृत्यति सदृशी वासन्तीयम्॥ छ० मं०

कुटिला[33]

(14 अक्षर)

(म० भ० न० य० ग० ग०)

कुटिला' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण, (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) यगण (।ऽऽ) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'म्भन्या गौ कुटिलम्' (छन्दोऽनु०)।** उदाहरण–

म०	भ०	न०	य०	ग०	ग०
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	। । ।	। ऽ ऽ	ऽ	ऽ

नीतोच्छ्रा यंमुहु रशिशि ररश्मे रु स्रै-
रानीलाभै र्विरचितपरभागारत्नैः।
ज्योत्स्नाशङ्कामिह वितरति हंसश्येनी
मध्येऽप्यह्नः स्फटिकरजतभित्तिच्छाया॥ कि० 5/31

नान्दीमुखी[34]

(14 अक्षर)

(न० न० त० त० ग० ग०)

नान्दीमुखी' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें 7-7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**स्वरभिदि यदि नौ तौ च नान्दीमुखी गौ (छ० मं०)।** उदाहरण–

न०	न०	त०	त०	ग०	ग०
। । ।	। । ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ	ऽ

सखिभ वतिभ वच्छ्लेष गण्डूष पा द–

33. इसका नामान्तर हंसश्येनी मिलता है।

34. इसका नामान्तर 'वसन्त' मिलता है

प्रतिहतिभिरियं यत्प्रसूनप्रसूतिः ।
कुरबकबकुलाशोकमुख्यद्रुमाणां
तदिह ननु तवायत्तसंपद् वसन्तः ।। छन्दोऽनु० 2/224

लोला

(14 अक्षर)

(म० स० म० भ० ग० ग०)

लोला' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ) सगण (।।ऽ), मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें 7-7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण– **'द्विःसप्तच्छिदिलोला म्सौ म्भौ गौ चरणे चेत् (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	स०	म०	भ०	ग०	ग०
ऽऽऽ	।।ऽ	ऽऽऽ	ऽ।।	ऽ	ऽ

माद्यत्कोकिलवा दंरोल म्बालिनि ना दं
रक्ताशोकविकासं स्निग्धालीपरिहासम् ।
मुग्धे ! वीक्ष्य वसन्तं भूलोके प्रभवन्तं
मा कार्षी रतिमानं मारत्रासनिदानम् ।। का० क० 2/74

असम्बाधा

(14 अक्षर)

(म० त० न० स० ग० ग०)

असम्बाधा' के प्रतिचरण में चौदह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), सगण (।।ऽ) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें 5 तथा 9 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण– **'म्तौन्सौ गावक्ष-ग्रहविरतिरसम्बाधा (वृ० र०)। उदाहरण–**

म०	त०	न०	स०	ग०	ग०
ऽऽऽ	ऽऽ।	।।।	।।ऽ	ऽ	ऽ

नैतल्ल क्ष्माङ्केकि मुतक टुरसं बा धा–
हेतुः संलीनं विषमिह सहजप्रीत्या ।
तेनायं मूर्च्छां विरचयति सुधारश्मिः
शङ्के निःशङ्कः सपदि विरहिलोकानाम् ।। छन्दोऽनु०-2/230

शशिकला

(15 अक्षर)

(न० न० न० न० स०)

शशिकला' के प्रतिचरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः चार नगण (।।।, ।।।, ।।।, ।।।) और एक सगण (।।ऽ) होते हैं। फलतः यह अन्त गुरु होता है। इसमें यति[35] पाद के अन्त में होती है। लक्षण– **'द्विहतहयलघुरथ गितिशशिकला (वृ० र०)। उदाहरण–**

35. कुछ विद्वान् इसमें 8 तथा 7 अक्षरों पर यति मानते हैं।

न०	न०	न०	न०	स०
।।।	।।।	।।।	।।।	।।ऽ

हरिप रिचर णनिर तमति रुचिर—
श्चिरपरिसरकृतवसतिरसुषिरः ।
सुरभिरभिदुरकुसुमचयविभवः
पशुपयुवतिततिविलसनसजपः ।। का० क० 2/76

चन्द्रलेखा

(15 अक्षर)

(म० र० म० य० य०)

चन्द्रलेखा' के प्रतिचरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं । इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), मगण (ऽऽऽ) और दो यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ) होते हैं । इसमें 7 तथा 8 अक्षरों पर यति होती है । लक्षण–**'म्रौ मो यौ चेद्भवेतां सप्ताष्टकैश्चन्द्रलेखा (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	र०	म०	य०	य०
ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

राजन् सत्यं तदेतद् ब्रूमोऽद्भुतं वर्णनं ते
दोर्दण्डस्थामभिः स स्पर्धां करोतु त्वदीयाम् ।
आच्छिन्द्याद्यो मुरारेवक्षः स्थलात् कौस्तुभं वा
यः कर्षेच्चन्द्रलेखां शंभोर्जटामण्डलाद्वा ।।–छन्दोऽनु० 2/250

चित्रा[36]

(15 अक्षर)

(म० म० म० य० य०)

चित्रा' के प्रतिचरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं । इसमें क्रमशः तीन मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ), और दो यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ) होते हैं । इसमें यति पाद के अन्त में होती है । लक्षण–**'चित्रा नामच्छन्दश्चित्रं चेत्त्रयो मा यकारौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	म०	म०	य०	य०
ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

शत्रौमित्रेहर्म्येऽरण्येसं मदेवा गदेवा
राज्ये भैक्षे रत्ने लोष्ठे काञ्चने वा तृणे वा ।
स्रोतस्विन्यां कामिन्यां वा निन्दने वा स्तुतौ वा
चित्रां चित्तावस्थां हित्वा संश्रयेथाः समाधिम् ।। छन्दोऽनु० 2/249

36. इसका नामान्तर 'मण्डूकी' तथा 'चञ्चला' मिलता है ।

कामक्रीडा[37]

(15 अक्षर)

(म० म० म० म० म०)

कामक्रीडा' के प्रतिचरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः पाँच मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'माबाणाः स्युर्यस्यां सा कामक्रीडा संज्ञातव्या (वृ० र०)। उदाहरण–**

म०	म०	म०	म०	म०
ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽऽ

उक्तावा चंनोद तेतल्पे शेतेव्या वृत्ताङ्गी
पर्याक्षिप्तक्षौमप्रान्ता प्रस्थातुं काङ्क्षत्याशु।
कामक्रीड़ावार्तागोष्ठीप्रारम्भेऽप्युच्चैर्व्रीडां
धत्ते पत्युः प्रीत्यै वामारम्भाप्येवं सा बाला ॥–छन्दोऽनु० 2/262

मालिनी[38]

(15 अक्षर)

(न० न० म० य० य०)

मालिनी' के प्रतिचरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) एक मगण (ऽऽऽ) और दो यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ) होते हैं। इसमें 8 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'ननमययुतेयं मालिनीभोगिलोकैः' (छ० मं०। उदाहरण–**

न०	न०	म०	य०	य०
।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

क्षणशयितवि बुद्धाःक ल्पयन्तः प्रयोगा–
नुदधिमहतिराज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्। शिशु० 11/6

उत्सर[39]

(15 अक्षर)

(र० न० भ० भ० र०)

उत्सर' के प्रतिचरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'रान्नभभ्राः सुन्दरम्' (छदोऽनु०)।। उदाहरण–**

र०	न०	भ०	भ०	र०
ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।ऽ

मर्त्यलोकदुरवाप्तमवाप्तरसोदयं
नूतनत्वमतिरिक्ततयाऽनुपदं दधत्।
श्रीपतिः पतिरसाववनेश्च परस्परं
सङ्कथाऽमृतमनेकमसिस्वदतामुभौ ॥ शिशु० 13/69

37. इसका नामान्तर 'लीलाखेल' तथा 'सारङ्गी' मिलता है।
38. इसका नामान्तर 'मंजुमालिनी' मिलता है।
39. इसका नामान्तर 'सुन्दर' मिलता है।

चामर[40]

(15 अक्षर)

(र० ज० र० ज० र०)

चामर' के प्रतिचरण में पन्द्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'र्जर्जरास्तूणकम्'। छन्दोऽनु०। उदाहरण–**

र०	ज०	र०	ज०	र०
ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ

देवरा जसेव्य मानपा वनाङ्घ्रि पङ्कजं
व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम्।
नारदादियोगिवृन्दवन्दितं दिगम्बरं
काशिकापुराधिनाथ कालभैरवं भजे॥ बृ० स्तो०र०

ऋषभगजविलसित

(16 अक्षर)

(भ० र० न० न० न० ग०)

ऋषभगजविलसित' के प्रतिचरण में सोलह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक भगण (ऽ।।), एक रगण (ऽ।ऽ), तीन नगण (।।।, ।।।, ।।।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 7 तथा 9 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'भ्रत्रिनगैः स्वराङ्कमृषभगजविलसितम् (छ० मं)। उदाहरण–**

भ०	र०	न०	न०	न०	ग०
ऽ।।	ऽ।ऽ	।।।	।।।	।।।	ऽ

योहरि रुच्चखा नखर त र न खशिख रै–
दुर्जयदैत्यसिंहसुविकटहृदयतटम्।
किन्विह चित्रमेतदखिलमपहृतवत:
कंसनिदेशदृप्यदृषभगजविलसितम्॥ छ० मं०

पंचचामर

(16 अक्षर)

(ज० र० ज० र० ज० ग०)

पंचचामर' के प्रतिचरण में सोलह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति[41] पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'जरौ जरौ जगाविदं वदन्ति पञ्चचामरम् (वृ० र०)। उदाहरण–**

ज०	र०	ज०	र०	ज०	ग०
।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकारचण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥ बृ० स्तो० र०

40. इसका नामान्तर 'तूणक' मिलता है।

41. कुछ विद्वान् इसमें 2-2- तथा 4-4 अक्षरों पर यति मानते हैं।

मदनललिता

(16 अक्षर)

(म० भ० न० म० न० ग०)

मदनललिता' के प्रतिचरण में सोलह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (SSS), भगण (S।।), नगण (।।।) मगण (SSS), नगण (।।।) और अन्त में एक गुरु होते हैं। इसमें 4 तथा 6–6 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'म्भौ नो म्नौ गो मदनललिता वेदैः षड्ऋतुभिः (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	भ०	न०	म०	न०	ग०
S S S	S । ।	। । ।	S S S	। । ।	S

विभ्रष्ट स्रग्गलि तचिकु राधौता ध र पु टा
ग्लायत्पत्रावलिकुचतटोच्छ्वासोर्मितरला
राधाऽत्यर्थं मदनललिताऽऽन्दोलालसवपुः
कंसाराते रतिरसमहो ! चक्रेऽति चटुलम् ।। छ० मं०

वाणिनी

(16 अक्षर)

(न० ज० भ० ज० र० ग०)

वाणिनी' के प्रतिचरण में सोलह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), जगण (।S।), भगण (S।।), जगण (।S।) रगण (S।S) और अन्त में एक गुरु होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**नजभजरैर्यदा भवति वाणिनी गयुक्तैः (छ०मं०)। उदाहरण–**

न०	ज०	भ०	ज०	र०	ग०
। । ।	। S ।	S । ।	। S ।	S । S	S

स्फुरतु ममान नेऽद्यन नुवाणि ! नीतिर म्यं
तव चरणप्रसादपरिपाकतः कवित्वम् ।
भवजलराशिपारकरणक्षमं मुकुन्दं
सततमहं स्तवैः स्वरचितैः स्तवानि नित्यम् ।। छ० मं०

अचलधृति

(16 अक्षर)

(न० न० न० न० न० ल०)

अचलधृति' के प्रतिचरण में सोलह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः पाँच नगण (।।।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।।) और एक लघु (।) होते हैं। इस तरह यह एक सर्व लघु वृत्त होता है। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'द्विगुणितवसु लघुभिरचलधृतिरिह (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	न०	न०	न०	न०	ल०
। । ।	। । ।	। । ।	। । ।	। । ।	।

शुचिरुचिमुडुगणमगणनममुमति
कलयसि कृशतनु ! न गगनतटमनु ।
प्रतिनिश शशितलविगलदमृतभृत–
रविरथहयचयखुरबिलकुलमिव ।। नै० 22/146

प्रवरललित

(16 अक्षर)

(य० म० न० स० र० ग०)

प्रवरललित' के प्रतिचरण में सोलह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः यगण (ISS), मगण (SSS), नगण (III), सगण (IIS), रगण (SIS) और अन्त में एक गुरु (S) होता है। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण—**'यमौ नस्रौ गश्च प्रवरललितं नामवृत्तम् (छ० मं०) । उदाहरण—**

य०	म०	न०	स०	र०	ग०
ISS	SSS	III	IIS	SIS	S

भुजोत्क्षे पःशून्ये ' वलव लयझ ङ्कारयु क्तो
मुधा पादन्यासः प्रकटिततुलाकोटिनादः ।
स्मितं वक्त्रेऽकस्माद् दृशि पटुकटाक्षोर्मिलीला
हरौ ओयादीदृक् प्रवरललितं वल्लवीनाम् ॥ छ० मं०

शिखरिणी

(17 अक्षर)

(य० म० न० स० भ० ल० ग०)

शिखरिणी' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः यगण (ISS), मगण (SSS), नगण (III), सगण (IIS), भगण (SII) और एक लघु (I) एवं एक गुरु (S) होते हैं। इसमें 6 तथा 11 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण—**'रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी (छ० मं०) । उदाहरण—**

य०	म०	न०	स०	भ०	ल०	ग०
ISS	SSS	III	IIS	SII	I	S

शिशुर्वा शिष्यावा यदसि ममत त्तिष्ठतु त था
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ॥ उ०रा०च० 4/11

पृथ्वी

(17 अक्षर)

(ज० स० ज० स० य० ल० ग०)

पृथ्वी' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः जगण (ISI), सगण (IIS), जगण (ISI), सगण (IIS), यगण (ISS) और एक लघु (I) एवं एक गुरु (S) होते हैं। इसमें 8 तथा 9 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण—**जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः (छ० मं०) । उदाहरण—**

ज०	स०	ज०	स०	य०	ल०	ग०
ISI	IIS	ISI	IIS	ISS	I	S

दधद्यि रभित स्तटौवि कचवा रिजाम्बू न दै—
विनोदितदिनक्लमाः कृतरुचश्च जाम्बूनदैः ।
निषेव्य मधु माधवा रसवदत्र कादम्बरं
हरन्ति रतये रहः प्रियतमाङ्गकादम्बरम् ॥ शिशु० 4/66

हरिणी

(17 अक्षर)

(न० स० म० र० स० ल० ग०)

हरिणी' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), सगण (।।ऽ), मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 6, 4 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण– **'नसमरसलागःषड्-वेदै-र्हयै र्हरिणी मता (छ० मं०)।।** उदाहरण–

न०	स०	म०	र०	स०	ल०	ग०
।।।	।।ऽ	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

वितर तिगुरुः प्राज्ञेवि द्यांयथै वतथा ज डे
न तु खलु तयो ज्ञनि शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुन र्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचि बिम्बग्राहे मणि र्न मृदादयः ।। उ०रा०च० 1/4

अतिशायिनी

(17 अक्षर)

(स० स० ज० भ० ज० ग० ग०)

अतिशायिनी' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ), एक जगण (।ऽ।), एक भगण (ऽ।।) पुनः एक जगण (।ऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति दस तथा सात अक्षरों पर होती है। लक्षण– **'दिग्गैरतिशायिनी भवेत्ससजभा जगौ गः (वा० व)।** उदाहरण–

स०	स०	ज०	भ०	ज०	ग०	ग०
।।ऽ	।।ऽ	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ	ऽ

इतिधौ तपुर न्धिंमत्स रानृसर सिमज्ज नै न
श्रियमाप्तवतोऽतिशायिनीमपमलाङ्गभासः।
अवलोक्य तदेव यादवानपरवारिराशेः
शिशिरेतररोचिषाऽप्ययां ततिषुभङ्क्तुमीषे।। शिशु० 8/71

मन्दाक्रान्ता

(17 अक्षर)

(म० भ० न० त० त० ग० ग०)

मन्दाक्रान्ता' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें 4, 6 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण– **'मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगै र्मो भनौ तौ गयुग्मम् (छ० मं०)** उदाहरण–

म०	भ०	न०	त०	त०	ग०	ग०
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ	ऽ

धूमज्यो तिःसलिं लमरु तांसन्नि पातःक्व मे घः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥–मेघ०

वंशपत्रपतित

(17 अक्षर)

(भ० र० न० भ० न० ल० ग०)

वंशपत्रपतित' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) और अन्त में एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 10 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**दिङ्मुनिवंशपत्रपतितं भरनभनलगैः' (छ० मं०)**। उदाहरण–

भ०	र०	न०	भ०	न०	ल०	ग०
ऽ।।	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	।।।	।	ऽ

सम्प्रति लब्धज न्मशन कैःकथ मपिल घु नि
क्षीणपयस्युपेयुषिभिदां जलधर पटले।
खण्डितविग्रहं बलभिदो धनुरिह विविधाः
पूरयितुं भवन्ति विभवः शिखरमणिरुचः ॥–कि० 5/43

नर्दटक[42]

(17 अक्षर)

(न० ज० भ० ज० ज० ल० ग०)

नर्दटक' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 7 तथा 10 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'हयदशभिर्नजौ भजजला गुरुनर्दटकम् (वृ० र०)**। उदाहरण–

न०	ज०	भ०	ज०	ज०	ल०	ग०
।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	।	ऽ

अमल मृणाल काण्डक मनीय कपोल रु चे–
स्तरल सलीलनीलनलिनप्रतिफुल्लदृशः।
विकसदशोकशोणकणकान्तिभृतः सुतनो–
र्मदलुलितानि हन्त ललितं निहरन्ति मनः ॥ प्र० रा० 2/20

42. यति भेद के कारण इसका नामान्तर 'कोकिलक' या नर्कुटक मिलता है।
वृत्तरत्नाकरे–''हयदशभिर्नजौ भज्जला गुरु नर्दटकम्''।
''मुनिगुहकार्णवः कृतयति वद कोकिलकम्।
छन्दोमञ्जरीमें–''यदि भवतोनजौ भजजला गुरुनर्दटकम्।

हारिणी

(17 अक्षर)

(म० भ० न० म० य० ल० ग०)

हारिणी' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 4, 6 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–'**वेदर्त्वश्वैर्मभनमयलागश्चेत्तदा हारिणी (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	भ०	न०	म०	य०	ल०	ग०
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।	ऽ

यस्यानि त्यंश्रुति कुवल येश्रीशा लिनीलो च ने
राग: स्वीयोऽधरकिसलये लाक्षारसारञ्जनम्।
गौरी कान्तिः प्रकृतिरुचिरा रम्याङ्गरागच्छटा
सा कंसारे रजनि न कथं राधा मनोहारिणी ॥ छ० मं०

भाराक्रान्ता

(17 अक्षर)

(म० भ० न० र० स० ल० ग०)

भाराक्रान्ता' के प्रतिचरण में सत्रह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 4, 6 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–'**भाराक्रान्ता मभनरसला गुरु श्रुतिषड्हयैः (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	भ०	न०	र०	स०	ल०	ग०
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

भाराक्रा न्तामम तनुरि यंगिरी न्द्रविधा र णात्
कम्पं धत्ते श्रमजलकणं तथा परिमुञ्चति।
इत्यावृण्वञ्जयति जलदस्वनाकुलवल्लवी–
संश्लेषोत्थं स्मरविलसितं विलोक्य गुरुं हरिः ॥ छ० मं०

कुसुमितलतावेल्लिता

(18 अक्षर)

(म० त० न० य० य० य०)

कुसुमितलतावेल्लिता' के प्रतिचरण में अठारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), और तीन यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ) होते हैं। इसमें इसमें 5, 6 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–'**स्याद्भूतर्त्वश्वैः कुसुमितलतावेल्लिता म्तौ नयौ यौ (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	त०	न०	य०	य०	य०
ऽऽऽ	ऽऽ।	।।।	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

तस्मादि्भ क्षार्थंम मगुरु रितोया वदेव प्रयात–
स्त्यक्त्वाकाषायं गृहमहमितस्तावदेव प्रयास्ये ।
पूज्यं लिङ्गं हि स्खलितमनसो विभ्रतः क्लिष्टबुद्धे–
र्नामुत्रार्थः स्यादुपहतमते र्नाप्ययं जीवलोकः । सौ०न० 7/52

नाराच[43]

(18 अक्षर)

(न० न० र० र० र० र०)

नाराच' के प्रतिचरण में अठारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) और चार रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**इहननरचतुष्कसृष्टन्तु नाराचमाचक्षते (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	न०	र०	र०	र०	र०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ

कृतसकलजगद्विबोधोऽवधूतान्धकारोदयः
क्षयितकुमुदतारकश्री ! वियोगं नयन्कामिनः ।
बहुतरगुणदर्शनादभ्युपेताल्पदोषः कृती
तव वरद ! करोतु सुप्रातमह्नामयं नायकः ।। शिशु० 4/67

चित्रलेखा[44]

(18 अक्षर)

(म० भ० न० य० य० य०)

चित्रलेखा' के प्रतिचरण में अठारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) और तीन यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ) होते हैं। इसमें 4 तथा 7-7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'मन्दाक्रान्ता नपरलघुयुता कीर्तिताचित्रलेखा (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	भ०	न०	य०	य०	य०
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

अम्भोजा क्षीनिल य प रि सरेके सरे पुष्पभारै–
र्नम्रीभूताखिलविटपचये चञ्चरीकस्वनाढ्ये ।
पाटीराद्रिप्रभवनवमरुद्वीजितौ मन्दमन्दं
दोलालीलां रहसि विदधतुर्घोषसौभाग्यदेवौ ।। का० क० 2/84

43. इसका नामान्तर 'महामालिका' या 'महामालिनी' मिलता है।
44. इसका नामान्तर 'चन्द्रलेखा' मिलता है।

नन्दन

(18 अक्षर)

(न० ज० भ० ज० र० र०)

नन्दन' के प्रतिचरण में अठारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और दो रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें 11 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**नजभजरैस्तु रेफसहितैः शिवैर्हयैर्नन्दनम् (छ० मं०)**। **उदाहरण**–

न०	ज०	भ०	ज०	र०	र०
।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ

अहृत धनेश्व रस्ययु धियःस मेतमा योधनं
तमहमितो विलोक्य विबुधैः कृतोत्तमायोधनम् ॥
विभवमदेन निह्नुत ह्रियातिमात्र सम्पन्नकं
व्यथयति सत्पथादधिगताथ वेह सम्पन्नकम् ॥ भट्टिकाव्य 10/36

मत्तकोकिल[45]

(18 अक्षर)

(र० स० ज० ज० भ० र०)

मत्तकोकिल' के प्रतिचरण में अठारह अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ) दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) एक भगण (ऽ।।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**मत्तकोकिलवृत्तमेतदवेहि रःसजजं भरौ (वा० व)**। **उदाहरण**–

र०	स०	ज०	ज०	भ०	र०
ऽ।ऽ	।।ऽ	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।।	ऽ।ऽ

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
सिञ्जनीकृतपन्नगेश्वरमच्युताननसायकम् ।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ वृ० स्तो० र०

शार्दूलविक्रीडित

(19 अक्षर)

(म० स० ज० स० त० त० ग०)

शार्दूलविक्रीडित' के प्रतिचरण में उन्नीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 12 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् (छ० मं०)**। **उदाहरण**–

45. इसका नामान्तर 'उज्ज्वल' तथा 'चर्चरी' मिलता है।

म०	स०	ज०	स०	त०	त०	ग०
ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विस्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदञ्च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ॥ अभि०शाकु० 2/7

मेघविस्फूर्जिता

(19 अक्षर)

(य० म० न० स० र० र० ग०)

मेघविस्फूर्जिता' के प्रतिचरण में उन्नीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः यगण (।ऽऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), दो रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 6-6 तथा 7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'रसर्त्वश्वैर्य्मौन्सौ ररगुरुयुतौ मेघविस्फूर्जिता स्यात्' (छ० मं०)। उदाहरण–**

य०	म०	न०	स०	र०	र०	ग०
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ

श्रियाजु ष्टंदिव्यैः सपट हरवै रन्वितं पुष्पव र्षै–
र्वपुष्टश्चैद्यस्य क्षणमृषिगणैः स्तूयमानं निरीक्ष्य।
प्रकाशेनाकाशे दिनकरकराद्विक्षिपद्विस्मिताक्षै–
र्नरेन्द्रैरौपेन्द्रं वपुरथ विशद्धाम वीक्षाम्बभूवे ॥ शिशु० 20/79

सुवदना

(20 अक्षर)

(म० र० भ० न० य० भ० ल० ग०)

सुवदना' के प्रतिचरण में बीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), भगण (ऽ।।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 7-7 तथा 6 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुताभ्लौगः सुवदना (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	र०	भ०	न०	य०	भ०	ल०	ग०
ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽ।।	।।।	।ऽऽ	ऽ।।	।	ऽ

तं स्मृत्वा शुल्कदो षंभव तुमम सुतोरा जेत्यभि हि तं
तद्धैर्येणाश्वसत्या व्रजसुत ! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक् प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः ॥
(प्रतिमाना० 3/11)

गीतिका

(20 अक्षर)

(स० ज० ज० भ० र० स० ल० ग०)

गीतिका' के प्रतिचरण में बीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः सगण (IIS), दो जगण (ISI, ISI) भगण (SII), रगण (SIS), सगण (IIS) और एक लघु (I) एवं एक गुरु (S) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'सजजा भरौ सलगा यदा कथिता तदा खलु गीतिका (छ० मं०)**। उदाहरण–

स०	ज०	ज०	भ०	र०	स०	ल०	ग०
IIS	ISI	ISI	SII	SIS	IIS	I	S

कमनी यकङ्क णहार नूपुर-कुण्डल च्छविम ण्डि ता
सहचारिणीपटलीवृतामधुकेलिकल्पनमण्डिता।
निपुणं नितान्तमवाप्य कान्तमनन्तरंचितसम्पदा
वरसानुशैलसुवासिनी विजहार मारवशंव्वदा॥ का० क० 2/990

शोभा

(20 अक्षर)

(य० म० न० न० त० त० ग० ग०)

शोभा' के प्रतिचरण में बीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः यगण (ISS), मगण (SSS), दो नगण (III, III), दो तगण (SSI, SSI) और दो गुरु होते हैं। इसमें 6 तथा 7-7 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'रसाश्वाङ्गैर्यो मो॰॰यगुतयुगगागस्तदा नाम शोभा (वा० व)**। उदाहरण–

य०	म०	न०	न०	त०	त०	ग०	ग०
ISS	SSS	III	III	SSI	SSI	S	S

सदापू र्णोन्मील त्सरसि जयुग लामध्य नम्राफ ला भ्यां
तयोरूर्ध्वं राजत्तरलकिसलयाश्लिष्टसुस्निग्धशाखा।
लसन्मुक्तारक्तोत्पलकुवलयवच्चन्द्रबिम्बिञ्चिताग्रा
महाशोभा मौलौ मिलदलिपटलैः कृष्ण! सा काऽपिवल्ली॥ छ० मं०

स्रग्धरा

(21 अक्षर)

(म० र० भ० न० य० य० य०)

स्रग्धरा' के प्रतिचरण में इक्कीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः मगण (SSS), रगण (SIS), भगण (SII), नगण (III) और तीन यगण (ISS, ISS, ISS) होते हैं। इसमें यति 7-7-7 अक्षरों पर होती है। लक्षण–**'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् (छ० मं०)**। उदाहरण–

म०	र०	भ०	न०	य०	य०	य०
SSS	SIS	SII	III	ISS	ISS	ISS

ग्रीवाभ ङ्गाभिरा मंमुहु रनु प ततिस्य न्दनेब द्धदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।।अभि०शाकु० 1/6

सरसी[46]

(21 अक्षर)

(न० ज० भ० ज० ज० ज० र०)

सरसी' के प्रतिचरण में इक्कीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (III), जगण (ISI), भगण (SII), तीन जगण (ISI, ISI, ISI) और एक रगण (SIS) होते हैं। इसमें 11 तथा 10 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**नजभजजाजरौ यदि तदा गदिता सरसी कवीश्वरैः (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	ज०	भ०	ज०	ज०	ज०	र०
III	ISI	SII	ISI	ISI	ISI	SIS

तुरग शताकु लस्यप रितःप रमेकतु रङ्ग जन्मनः
प्रमथितभूमृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता ।
परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सततं धृतश्रिय–
श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाऽभवदन्तरं महत् ।। शिशु 3/82

हंसी

(22 अक्षर)

(म० म० त० न० न० न० स० ग०)

हंसी' के प्रतिचरण में बाइस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो मगण (SSS, SSS) एक तगण (SSI), तीन नगण (III, III, III) एक सगण (IIS) और एक गुरु (S) होते हैं। इसमें 8 तथा 14 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–**'मौ गौ नाश्चत्वारो गोगो वसुभुवनयतिरिति भवति हंसी (छ० मं०)।**[47] **उदाहरण–**

म०	म०	त०	न०	न०	न०	स०	ग०
SSS	SSS	SSI	III	III	III	IIS	S

सार्धंका न्तेनैका न्तेऽसौवि कचक मलम धुसुर भिपिबन्ती
कामक्रीडाकूतस्फीतप्रमदसरसतरमलघु रसन्ती
कालिन्दीये पद्मारण्ये पवनपतनपरितरलपरागे
कंसाराते पश्य स्वेच्छं सरभसगतिरिह विलसति हंसी ।। छ० मं०

46. इसका नामान्तर 'पंचकावली' शशिवदना' सिंहक आदि मिलता है।
47. इसका लक्षण भिन्न शैली में ही किया गया मिलता है।

मदिरा

(22 अक्षर)

(भ० भ० भ० भ० भ० भ० भ० ग०)

मदिरा' के प्रतिचरण में बाइस अक्षर होते हैं। इसमें आरम्भ से सात भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।) और अन्त में एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति का विधान उक्त नहीं है। लक्षण–**सप्तभकारयुतैकगुरु र्गदितेयमुदा रतरा मदिरा (छ० मं०)**। **उदाहरण**–

भ०	भ०	भ०	भ०	भ०	भ०	भ०	ग०
ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ

नोपव नेप्रव हत्पव नेकुसु मासव लोलुपभृङ्गकु ले
कोकिलकाकलिकाललिते बलिते नव मालिक या परितः।
साञ्चलिता ललितादिसखी-निकरेण समं वृषभानुसुता
नन्दतनूजमवाप्य नवं दयितं सुरभौ विजहार मुहुः॥ का० क० 2/992

भद्रक

(22 अक्षर)

(भ० र० न० र० न० र० न० ग०)

भद्रक' के प्रतिचरण में बाइस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ) नगण (।।।) और एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 10 तथा 12 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–'**भ्रौ नरनारनावथ गुरु र्दिगर्कविरमं हि भद्रकमिदम्' (वृ० र०)**। **उदाहरण**–

भ०	र०	न०	र०	न०	र०	न०	ग०
ऽ।।	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।ऽ	।।।	ऽ

भद्रकगीतिभिः सकृदपि स्तुवन्ति भव! ये भवन्तमभवं
भक्तिभरावनम्रशिरसः प्रणम्य तव पादयोः सुकृतिनः
ते परमेश्वरस्य पदवीमवाप्य सुखमाप्नुवन्ति विपुलं
मर्तभुवं स्पृशन्ति न पुनर्मनोहरसुराङ्गनापरिवृताः॥ छ० सू० 7/26

अद्रितनया[48]

(23 अक्षर)

(न० ज० भ० ज० भ० ज० भ० ल० ग०)

अद्रितनया' के प्रतिचरण में तेइस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः नगण (।।।) जगण (।ऽ।) भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) भगण (ऽ।।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 11 तथा 12 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण–'**नजभजभा जभौ लघुगुरुर्बुधैस्तु गदितेयमद्रितनया (छ० मं०)**। **उदाहरण**–

48. इसका नामान्तर 'अश्वललित' मिलता है।

न०	ज०	भ०	ज०	भ०	ज०	भ०	ल०	ग०
।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।।	।	ऽ

निरयमहान्ध कूपम समान्ध कारभ रदुर्बि लोकम तु लं
निपतितगाढ़मोहपटलान्धजन्तुविविध प्रलापतुमुलम् ।
प्रवचनचक्षषेक्षत इमं चिराय तनुभृत्ततथापिबलवच-
चपलतरेन्द्रियाश्वललितैर्विकृष्ट इह तत्क्षणान्निपतति ।। छन्दोऽनु० 3/58

मत्ताक्रीड

(23 अक्षर)

(म० म० त० न० न० न० न० ल० ग०)

मत्ताक्रीड' के प्रतिचरण में तेइस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ), एक तगण (ऽऽ।), चार नगण (।।।, ।।।, ।।।, ।।।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें 8, 5 तथा 10 अक्षरों पर यति होती है। लक्षण-**मत्ताक्रीडं वस्विष्वाशायति मयुगगयुगमनुलघुगुरुभिः (छ० मं०)**।[49] **उदाहरण**-

म०	म०	त०	न०	न०	न०	न०	ल०	ग०
ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽ।	।।।	।।।	।।।	।।।	।	ऽ

हृद्यं द्यंपीत्वा नारीस्ख लितग तिरति शयर सिकहृ द या
मत्ता क्रीड़ालोलैरङ्गैर्मुदमाखलविटजनमनसि कुरुते ।
वीतक्रीड़ाश्लीलालापैः श्रवणसुखसुभगसुललितवचना
नृत्यैर्गीतैर्भ्रूविक्षेपैः कलमणितविविधविहगकुलरुतैः ।। छ० सू० 7/28

मत्तगजेन्द्र

(23 अक्षर)

(भ० भ० भ० भ० भ० भ० भ० ग० ग०)

मत्तगजेन्द्र' के प्रतिचरण में तेइस अक्षर होते हैं। इसमें आरंभ से सात भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।) और अन्त में दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति का विधान उक्त नहीं है। लक्षण-'**सप्तभकारगुरुद्वयनिर्मित कायमवेहि च मत्तगजेन्द्रम् (वा० व०)**। **उदाहरण**-

भ०	भ०	भ०	भ०	भ०	भ०	भ०	ग०	ग०
ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

पद्मदलायतलोचन हेरघु वंशवि भूषण देवद या लो
निर्मलनीरदनीलतनोऽखिललोकहृदम्बुजभासकभानो ।
कोमलगात्रपवित्रपदाब्जरजः कणपावितगीतमकान्तं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाधन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ।। बृ० स्तो० र०

49. इसका लक्षण भिन्न शैली में प्राप्त होता है।

हंसगति[50]

(23 अक्षर)

(न० ज० ज० ज० ज० ज० ज० ल० ग०)

हंसगति' के प्रतिचरण में तेइस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक नगण (।।।), छः जगण (।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽ।) और एक लघु (।) एवं एक गुरु होते हैं। इसमें यति का विधान उक्त नहीं है। लक्षण– **'न इह जषट्कलघूगुरुरेक इति प्रथितं श्रवणाभरणम् (वा० व०)।** उदाहरण–

न०	ज०	ज०	ज०	ज०	ज०	ज०	ल०	ग०
।।।	।ऽ।	।ऽ।	।ऽ।	।ऽ।	।ऽ।	।ऽ।	।	ऽ

मधुव नचारि णिभास्क रवाहि निजाह्व विसङ्ग्ग निसिन्धु सु ते
मधुरिपुभूषिणि माधवतोषिणिगोकुलभीति विनाशकृते।
जगदघमोचिनि मानसदायिनि केशव केलिनिदानगते
जय यमुने जय भीति निवारिणी सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥ बृ० स्तो० र०

मेघमाला

(24 अक्षर)

(न० न० र० र० र० र० र० र०)

मेघमाला के प्रतिचरण में चौबीस अक्षर होते हैं। इसमें दो नगण (।।।, ।।।) और छः रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं। लक्षण–**नौ रूर्मेघमाला (नगणद्वयं रगणषट्कं च) छन्दोऽनु०।** उदाहरण–

न०	न०	र०	र०	र०	र०	र०	र०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ

पतित मिवशि रःपितुः पादयोः स्निह्यते वास्मिरा ज्ञासमु त्थापितः
त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभि र्मातरः
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेशं च भाषां च सौमित्रिणा (प्रतिमाना०3/3)

तन्वी

(24 अक्षर)

(भ० त० न० स० भ० भ० न० य०)

तन्वी' के प्रतिचरण में चौबीस अक्षर होते हैं। इसमें भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।) नगण (।।।), सगण (।।ऽ) दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) एक नगण (।।।) और एक यगण (।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति 5, 7 तथा 12 अक्षरों पर होती है। लक्षण–**भूतमुनीनैर्यतिरिह भतनाः स्भौभनयाश्च यदि भवति तन्वी (छ० मं०)।** उदाहरण–

50. वाग्वल्लभ में इसे श्रवणाभरण' नाम से लक्षित किया गया है।

भ०	त०	न०	स०	भ०	भ०	न०	य०
ऽ।।	ऽऽ।	।।।	।।ऽ	ऽ।।	ऽ।।	।।।	।ऽऽ

चन्द्रमुखीसुन्द रघन जघना कुन्दस मानशि खरद शनाया
निष्कलवीणा श्रुतिसुखवचना त्रस्तकुरङ्गतरलनयनान्ता ।
निर्मुखपीनोन्नतकुचकलसा मत्तगजेन्द्रललितगतिभावा
निर्भरलीला निधुवनविषये मुञ्ज नरेन्द्र ! भवतु तव तन्वी ।। छ०सू० 7/29

क्रौञ्चपदा

(25 अक्षर)

(भ० म० स० भ० न० न० न० न० ग०)

क्रौञ्चपदा' के प्रतिचरण में पचीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः भगण (ऽ।।), मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ) भगण (ऽ।।), चार नगण (।।।, ।।।, ।।।, ।।।) और अन्त में एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति 5, 5, 8 तथा 7 अक्षरों पर होती है। लक्षण[53]– **'क्रौञ्चपदास्याद्भो मसभाश्चेदिषुशरवसुमुनियतिरिनलघुगैः (छ० मं०)। उदाहरण–**

भ०	म०	स०	भ०	न०	न०	न०	न०	ग०
ऽ।।	ऽऽऽ	।।ऽ	ऽ।।	।।।	।।।	।।।	।।।	ऽ

याकपि लाक्षीपि ङ्गलके शीकलि रुचिर नुदिन मनुन यकठि ना
दीर्घतराभिः स्थूलशिराभिः परिवृतवपुरतिशयकुटिलगतिः ।
आयतजङ्घा निम्नकपोला लघुतरकुचयुग परिचितहृदया
सा परिहार्या क्रौञ्चपदा स्त्री ध्रुवमिह निरवधि सुखमभिलषता ।। छ०सू० 7/30

भुजङ्गविजृम्भित

(26 अक्षर)

(म० म० त० न० न० न० र० स० ल० ग०)

भुजङ्गविजृम्भित' के प्रतिचरण में छबीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः दो मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ), एक तगण (ऽऽ।), तीन नगण (।।।, ।।।, ।।।) एक रगण (ऽ।ऽ), एक सगण (।।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसमें यति 8, 11 तथा 7 अक्षरों पर होती है। लक्षण– **'वस्वीशाश्वैश्छेदोपेतं ममतनयुगनरसलगैर्भुजङ्गविजृम्भितम् (छ० मं०)। उदाहरण–**

म०	म०	त०	न०	न०	न०	र०	स०	ल०	ग०
ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽ।	।।।	।।।	।।।	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

हेलोद ञ्चन्यञ्च त्पादप्र कटवि कटन टनभ रोरण त्करताल क–
श्चारुप्रेङ्खच्चूडाबर्हः श्रुतितरलनवकिसलयस्तरंगितहारधिक् ।
त्रस्यन्नागस्त्रीभिर्भक्त्या मुकुलितकरकमलयुगं कृतस्तुतिरच्युतः
पायान्नश्छिन्दन् कालिन्दीहृदकृत निजवसति बृहद्भुजङ्गविजृम्भितम् ।। छ०मं०

51. इसका लक्षण भिन्न शैली में प्राप्त होता है।

अपवाहक

(26 अक्षर)

(म० न० न० न० न० न० न० स० ग० ग०)

अपवाहक' के प्रतिचरण में छब्बीस अक्षर होते हैं। इसमें क्रमशः एक मगण (ऽऽऽ), छः नगण (।।।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।।) एक सगण (।।ऽ) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इसमें यति 9, 6-6 तथा 5 अक्षरों पर होती है। लक्षण-**अपवाहको म्नौ नौ नौ न्सौ गौ नवर्त्तुरसेन्द्रियाणि (छ० सू०)**। उदाहरण-

म०	न०	न०	न०	न०	न०	न०	स०	ल०	ग०
ऽऽऽ	।।।	।।।	।।।	।।।	।।।	।।।	।।ऽ	।	ऽ

श्रीकण्ठं त्रिपुर दहन ममृत किरण सकल कलित शिरसं रु द्रं
भूतेशं हतमुनिमखमखिलभुवननमितचरण युगमीशानम्।
सर्वज्ञं वृषभगमनमहिपतिकृतवलयरुचिरकरमाराध्यं
तं वन्दे भवभयमिदमभिमतफलवितरणगुरुमुमया युक्तम्॥ छ० सू० 7/32

दण्डक-प्रकरण

चण्डवृष्टिप्रपात

(27 अक्षर)

(न० न० र० र० र० र० र० र० र०)

चण्डवृष्टिप्रपात' दण्डक के प्रतिचरण में सत्ताइस अक्षर होते हैं। इसमें आरंभ से दो नगण (।।।, ।।।) और सात रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण-'**यदिह नयुगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः (छ० मं०)**। उदाहरण-

न०	न०	र०	र०	र०	र०	र०	र०	र०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ

जलद समय घोषणा डम्बरा नेकरू पक्रिया जभ्भका वज्रभृ द्गृष्टयो
भगणयवनिकास्तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूता नभोमार्गरूढक्षुपाः।
मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपाला गिरिस्नापनाम्भोघटाः
उदधिसलिभैक्षहारा रवीन्द्वर्गलायन्त्रप्रपा भान्ति नीलाम्बुदाः॥ अविमारकना० 1/6

प्रचितक

(27 अक्षर)

(न० न० य० य० य० य० य० य० य०)

प्रचितक' दण्डक के प्रतिचरण में सत्ताइस अक्षर होते हैं। इसमें आरंभ से दो नगण (।।।, ।।।) और सात यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण-'**प्रचितकसमभिधो धीरधीभिः स्मृतोदण्डको नद्वयादुत्तरैः सप्तभिर्यैः (छ० मं० उदाहरण-**

न०	न०	य०	य०	य०	य०	य०	य०	य०
।।।	।।।	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

मुरहर ! यदुकुलाम्भोधिचन्द्र ! प्रभो देवकीगर्भरत्न ! त्रिलोकैकनाथ !
प्रचितकपटसुरारिव्रजोद्दामदन्तावलस्तोमविद्रावणे केसरीन्द्र !
चरणनखरसुधांशुच्छटोन्मेषनिःशोषितध्यायिचेतो निविष्टान्धकार !
प्रणतजनपरितापोग्रदावानलोच्छेदमेघ ! प्रसीद प्रसीद प्रसीद ॥ छ० मं०

कुसुमस्तबक

(27 अक्षर)

(स० स० स० स० स० स० स० स० स०)

कुसुमस्तबक' दण्डक के प्रतिचरण में सत्ताइस अक्षर होते हैं। इसमें सभी नौ सगण (।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'सगणः सकलः खलु यत्र भवेत्तमिह प्रवदन्ति बुधाः कुसुमस्तबकम् (छ० मं०)। उदाहरण–**

स०	स०	स०	स०	स०	स०	स०	स०	स०
।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ

विरराजयदी यकरः कनक द्युतिब न्धुरवा मदृशः कुचकु ड्मलगो
भ्रमरप्रकरेण यथाऽऽवृतमूर्तिरशोकलताविलसत्कुसुमस्तबकः।
स नवीनतमालदलप्रतिमच्छवि विभ्रदतीव विलोचनहारि वपु–
श्चपलारुधिरांशुकवल्लिधरो हरिरस्तु मदीयहृदम्बुजमध्यगतः ॥ छ० मं०

मत्तमातङ्गलीलाकर

(27 अक्षर)

(र० र० र० र० र० र० र० र० र०)

मत्तमातङ्गलीलाकर' दण्डक के प्रतिचरण में सत्ताइस अक्षर होते हैं। इसमें सभी नौ रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण–**'यत्ररेफः परं स्वेच्छया गुम्फितः स स्मृतो दण्डको मत्तमातङ्गलीलाकरः (छ० मं०)। उदाहरण–**

र०	र०	र०	र०	र०	र०	र०	र०	र०
ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ

पुष्पचा पस्यचा पश्रियं बिभ्रती भङ्गुर भ्रूविला सैःस्मित स्मेरक स्तूरिका
केलिपत्रावलीभङ्गिवभ्राजिगण्डस्थलेनेन्दुबिम्बानुकारं सदा कुर्वती
चारुवक्रोक्तिगर्भैर्विचोभिर्विदग्धैरमन्दं च पीयूषनिष्यन्दमातन्वती
मत्तमातंगलीलागतिः काञ्चनच्छेदगौरीमुदं कस्य नाविष्करोति प्रिया ॥

–छन्दोऽनु० 2/294.1

अनङ्गशेखर

(28 अक्षर)

अनङ्गशेखर' दण्डक के प्रतिचरण में अठाइस अक्षर होते हैं। इसमें लघु-गुरु क्रम से अक्षर विन्यास किया जाता है, जबतक संख्या-पूर्त्ति नहीं हो जाती। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण-'**लघुर्गुरु निजेच्छया यदा निवेश्यते तदैष दण्डकोभवत्यनङ्गशेखरः (छ० मं०)।** उदाहरण-

। ऽ। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ

उदेत्यसौ सुधाकरः पुरो विलोकयाद्य राधिके ! विजृम्भमाणगौरदीधिती
रतिस्वहस्तनिर्मितः कलाकुतूहलेन चारुचम्पकैरनङ्गशेखरः किमु ?
इति प्रमोदकारिणीं प्रियाप्रसादलक्षणां गिरं समुद्गिरन्मुरारिरद्भुतां
प्रदोषकालसङ्गमोल्लसन्मना मनोजकेलिकौतुकी करोतु नः कृतार्थताम् ।। छ० मं०

अशोकपुष्पमञ्जरी

(28 अक्षर)

अशोकपुष्पमञ्जरी' दण्डक के प्रतिचरण में अठाइस अक्षर होते हैं। इसमें गुरु-लघु क्रम से अक्षर विन्यास किया जाता है, जबतक संख्या-पूर्त्ति नहीं हो जाती। इसमें यति पाद के अन्त में होती है। लक्षण-'**यत्र दृश्यते गुरोः परो लघुः क्रमात्स उच्यते बुधैरशोकपुष्पमञ्जरीति-छ०मं०।** उदाहरण-

ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ ।

मूर्ध्नि चारुचम्पकस्रजा सलीलवेष्टनं लसल्लवङ्गचारुचन्द्रिका कचेषु
कर्णयोरशोकपुष्पमञ्जरीवतंसको गले च क्रान्त केसरोपक्लृप्तदाम ।
फुल्लनागकेसरादिपुष्परेणुरूषणं तनौ विचित्रमित्युपात्तवेश एष
केशवः पुनातु नः सुपुष्पभूषितः सुमूर्तिमानिवागतो मधुर्विहर्तुमत्र ।। छ० मं०

अर्द्धसमवृत्त-प्रकरण

उपचित्र

उपचित्र' के प्रतिपाद में ग्यारह अक्षर होते हैं। किन्तु इसके विषम (1-3) पादों में क्रमशः तीन सगण (।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ) और एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होते हैं। इसके सम (2-4) पादों में क्रमशः तीन भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इस प्रकार यह एक अर्द्धसमवृत्त है। इसमें यति का विधान उक्त नहीं है। लक्षण-'**विषमे यदि सौ सलगा दले, भौ युजिभाद्गुरुकावुपचित्रम् (छ० मं०)।**

स०	स०	स०	ल०	ग०		भ०	भ०	भ०	ग०	ग०
।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।	ऽ		ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

उपचित्रकमत्रविरा ज ते   चूतवनं कुसुमैर्विकस द्भिः ।

स०	स०	स०	ल०	ग०	भ०	भ०	भ०	ग०	ग०
।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।	ऽ	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

परपुष्टविघु ष्टमनो ह रं मन्मथकेलिनिकेतनमेतत् ।। छ० सू० 5/53

वेगवती

(10+11 अक्षर)

वेगवती' के विषम (1-3) पादों में दस तथा सम (2-4) पादों में ग्यारह अक्षर होते हैं। यदि दोधक वृत्त का प्रथम अक्षर हटा दिया जाय तो इसके विषम (1-3) पादों की रचना होती है जबकि सम (2-4) पादों में दोधक वृत्त अविकल रूप में होता है। दोधक वृत्त में क्रमशः तीन भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। भगण आदिगुरु होता है। अतः इसका प्रथम अक्षर (ऽ) गुरुमात्रा को हटा देने से दस अक्षर पाद (1-3) होगा। इसलिए इसके आरंभ में दोलघु (।।) दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और अन्त दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। लक्षण–**'विषमे प्रथमाक्षरहीनं, दोधकमेव हि वेगवती स्यात्' (छ० मं०)। उदहारण–**

ल०	ल०	भ०	भ०	ग०	ग०	भ०	भ०	भ०	ग०	ग०
।	।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

त व मुञ्जन राधिप ! से नां, वेगव तींसह तेसम रे षु।
प्रलयोर्मिमिवाभिमुखीं तां कः सकलक्षितिभृन्निवहेषु ।। छ० सू० 5/35

हरिणप्लुता

(11+12 अक्षर)

हरिणप्लुता' के विषम (1-3) पादों में ग्यारह तथा सम (2-4) पादों में बारह अक्षर होते हैं। यदि द्रुतविलम्बित का प्रथम अक्षर हटा दिया जाय तो इसके विषम (1-3) पाद होते हैं, जबकि सम (2-4) पाद द्रुतविलम्बित के समान ही होते हैं। द्रुतविलम्बित पाद में क्रमशः नगण (।।।) दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसका प्रथम अक्षर लघु (।) हटा देने से विषम (1-3) पाद तथा पूर्ण लक्षण होने से सम (2-4) पाद होते हैं। लक्षण–**'अयुजि प्रथमेन विवर्जितं द्रुतविलम्बितकं हरिणप्लुता' (छ० मं०)। उदहारण–**

ल०	ल०	भ०	भ०	र०	न०	भ०	भ०	र०
।	।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।ऽ

प शु पाधिपनन्दन संयुता मधुस मृद्धिम वेक्ष्यस मुत्सुका।
वृषभानुसुता मदनोन्मदा सरभसं पटवासमुदक्षिपत् ।। का० क० 2/110

अपरवक्त्र

(11+12 अक्षर)

अपरवक्त्र' के विषम (1-3) पादों में ग्यारह तथा सम (2-4) पादों में बारह अक्षर होते हैं। विषम (1-3) पादों में क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) एक रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक रगण (ऽ।ऽ) होते हं। लक्षण–**'अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ' (छ० मं०)। उदाहरण–**

न०	न०	र०	ल०	ग०	न०	ज०	ज०	र०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ	।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ

अथहिमशुचि भस्मभूषि तं, शिरसि विराजितमिन्दुलेखया
स्ववपुरतिमनोहरं हरं, दधतमुदीक्ष्य ननाम पाण्डवः ॥ (कि० 18/15)

वसन्तमालिका[52]

(11+12 अक्षर)

वसन्तमालिका' एक अपरवक्त्र भेद है। इसके विषम 1-3) पादों में ग्यारह तथा सम (2-4) पादों में बारह अक्षर होते हैं। विषम (1-3) पादों में क्रमशः दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ), एक जगण (।ऽ।) और अन्त में दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।) रगण (ऽ।ऽ) और यगण (।ऽऽ) होते हैं। लक्षण–**'विषमे ससजा गुरू समे चेत् सभरा यश्च वसन्तमालिका स्यात् (वा० व)। उदाहरण–**

स०	स०	ज०	ग०	ग०	स०	भ०	र०	य०
।।ऽ	।।ऽ	।ऽ।	ऽ	ऽ	।।ऽ	ऽ।।	ऽ।ऽ	।ऽऽ

अपरिक्षतकोमलस्य यावत्, कुसुम स्येवन वस्यष ट्पदेन।
अधरस्यपिपासता मया ते, सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ॥ (अभि०शा० 3/21)

पुष्पिताग्रा

(12+13 अक्षर)

पुष्पिताग्रा' के विषम (1-3) पादों में बारह तथा सम (2-4) पादों में तेरह अक्षर होते हैं। विषम (1-3) पादों में क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) एक रगण (ऽ।ऽ) और एक यगण (।ऽऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) और अन्त में एक गुरु (ऽ) होते हैं। लक्षण–**'अयुजिनयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा (छ० मं०)। उदहारण–**

न०	न०	र०	य०	न०	ज०	ज०	र०	ग०
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।ऽऽ	।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

समदशिखरुतानि हंसनादैः कुमुद वनानि कदम्बपुष्पत्र[illegible]
श्रियमतिशयिनीं समेत्य जग्मु [illegible]महतां महते गुणाय याग

52. इसका नामान्तर 'मालभारिणी' या कालभारिणी मिलता है।

सुन्दरी[53]

(10+11 अक्षर)

सुन्दरी' के विषम (1-3) पादों में दस तथा सम (2-4) पादों में ग्यारह अक्षर होते हैं। विषम (1-3) पादों में क्रमशः दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ) एक जगण (।ऽ।), और एक गुरु (ऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः सगण (।।ऽ) भगण (ऽ।।) रगण (ऽ।ऽ) और एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ) होते हैं। लक्षण–**'अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः सभरा ल्गौ यदि सुन्दरी तदा (छ० मं०)। उदाहरण–**

स०	स०	ज०	ग०	स०	भ०	र०	ल०	ग०
।।ऽ	।।ऽ	।ऽ।	ऽ	।।ऽ	ऽ।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

नलिनंमलिनं विवृण्वती पृषतीमस्पृश तीतदी क्ष णे।
अयि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते, विदधाते रुचिगर्वदुर्विधम्॥ नै० 2/23

द्रुतमध्या

(11+12 अक्षर)

द्रुतमध्या' के विषम (1-3) पादों में ग्यारह तथा सम (2-4) पादों में बारह अक्षर होते हैं। विषम (1-3) पादों में क्रमशः तीन भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।) और एक यगण (।ऽऽ) होते हैं। लक्षण–**'भत्रयमोजगतं गुरुणी चेत् युजि च नजौ ज्यद्युतौ द्रुतमध्या (वृ० र०)। उदाहरण–**

भ०	भ०	भ०	ग०	ग०	न०	ज०	ज०	य०
ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ	ऽ	।।।	।ऽ।	।ऽ।	।ऽऽ

माधव वेणुर वश्रुति मुग धा धृतिवि धुराःस कलात्र जमुग्धाः।
माधवकेलिकलाकुतुकिन्यस्त्वरितमगुर्विपिनं प्रणयिन्यः॥ का० क० 2/100

केतुमती

(10+11 अक्षर)

केतुमती' के विषम (1-3) पादों में दस तथा सम (2-4) पादों में ग्यारह अक्षर होते हैं। विषम (1-3) पादों में क्रमशः सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) सगण (।।ऽ) और अन्त में एक गुरु (ऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) और अन्त में दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। लक्षण–'असमे सजौसगुरुयुक्तौ केतुमती समेभरनगाद्गः (वृ० र०)। उदाहरण–

स०	ज०	स०	ग०	भ०	र०	न०	ग०	ग०
।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽ	ऽ।।	ऽ।ऽ	।।।	ऽ	ऽ

प्रसर द्रजःस्थ गितसू र्यों केतुम तीमुदी क्ष्यतव से नाम्।
वसुधापते दिवमिवात्मः नाशमशङ्कत त्वदरिवर्गः॥ छन्दोऽनु० 3/7

53. इसका नामान्तर 'वियोगिनी' मिलता है।

आख्यानकी[54]

(11 अक्षर)

आख्यानकी' के प्रतिपाद में ग्यारह अक्षर होते हैं, किन्तु इसके विषम (1-3) पादों में क्रमशः दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) अन्त में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और अन्त में दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इस प्रकार यह एक अर्द्धसमवृत्त है। लक्षण–'आख्यानकी तौ जगुरुर्गओजे जतावनोजे जगुरू गुरुश्चेत्' (वृ० र०)। उदाहरण–

त०	त०	ज०	ग०	ग०	ज०	त०	ज०	ग०	ग०
ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ	ऽ	।ऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ	ऽ

त्वद्वैरिभूपैरियमागतोच्चैर् मरालनादैमुखरा शरच्छ्रीः।
आख्यानकीव त्वदनीकयात्रौ त्सवस्य सद्यश्चकितैरुदैक्षि ॥ छन्दोऽनु० 5/48

भद्रविराट

(10+11 अक्षर)

भद्रविराट्' के विषम पादों में दस तथा सम पादों में ग्यारह अक्षर होते हैं, किन्तु इसके विषम (1-3) पादों में क्रमशः तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) और अन्त में एक गुरु (ऽ) होते हैं। सम (2-4) पादों में क्रमशः मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और अन्त में दो गुरु (ऽ, ऽ) होते हैं। इस प्रकार यह एक अर्द्ध समवृत्त है। लक्षण–**'ओजे तपरौजरौगुरुश्चेत् म्सौज्गौ भद्रविराड्भवेदनोजे (वृ० र०)। उदाहरण–**

त०	ज०	र०	ग०	म०	स०	ज०	ग०	ग०
ऽऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ	ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	ऽ	ऽ

यत्पाद तलेच कास्तिच क्रं हस्तेवा कुलिशं स्ररोरु हं वा।
राजा जगदेकचक्रवर्त्ती स्याच्छं भद्रविराद् समश्नुतेऽसौ ॥ छ० सू० 5/36

यवमती[55]

(12+13 अक्षर)

'यवमती' के विषम (1-3) पादों के बारह तथा सम (2-4) पादों में तेरह अक्षर होते हैं। विषम (1-3) पादों में क्रमशः रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ) और जगण (।ऽ।) होते हैं। सम (2-4) पादों में जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) के अतिरिक्त अन्त में एक गुरु (ऽ) होता है। लक्षण–**'स्यादयुग्मके रजौ रजौ समे तु जरौ जरौ गुरुर्यदा यवान्मतीयम् (वृ० र०)। उदाहरण–**

र०	ज०	र०	ज०	ज०	र०	ज०	र०	ग०
ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

पद्मक न्तुको मलेकरे विभाति प्रशंस्य मत्स्यला ञ्छनं पदेचय स्याः।
सा यवान्विता भवेद्धनाधिका च स्वन्तबन्धुपूजिता प्रिया च पत्युः ॥ छ० सू० 5/43

54. इसका क्रम उलट देने पर 'विपरीताख्यानकी' वृत्त होता है।
55. इसका नामान्तर 'अमरावती' मिलता है।

विषमवृत्त-प्रकरण

उद्‌गता

(12+13 अक्षर)

उद्‌गता' के प्रथम द्वितीय पादों में दस एवं तृतीय पाद में ग्यारह तथा चतुर्थ पाद में तेरह अक्षर होते हैं। यह एक विषम वृत्त है। इसके प्रथम पाद में क्रमशः सगण (।।S) जगण (।S।), सगण (।।S) और एक लघु (।), द्वितीय पाद में क्रमशः नगण (।।।), सगण (।।S) जगण (।S।) तथा अन्त में एक गुरु और तृतीय पाद में क्रमशः भगण (S।।), नगण (।।।) जगण (।S।) एवं अन्त में एक लघु तथा एक गुरु होते हैं। चतुर्थ पाद में सगण (।।S) जगण (।S।), सगण (।।S) और जगण (।S।) तथा अन्त में एक गुरु होते हैं। लक्षण–**'प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यनन्तरम्। यद्यथ भनजलगाः स्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्‌गता ॥ छ० मं० उदाहरण–**

स० जगण० स० ल० न० स० ज० ग०

।।S ।S। ।।S । ।।। ।।S ।S। S

वपुरि न्द्रियोप तपने षु सतत मसुखे षुपाण्ड वः।

भ० न० ज० ल० ग० स० ज० स० ज० ग०

S।। ।।। ।S। । S ।।S ।S। ।।S ।S। S

व्यापन गपति रिवस्‍ि थर तां महतां हिधैर्य मविभा व्यवैभवम्॥ कि० 12/3

सौरभक

जिस उद्‌गता' के तृतीय चरण में क्रमशः रगण (S।S), नगण (।।।), भगण (S।।) और अन्त में एक गुरु हो, तथा अन्य तीन चरण (1-2 एवं 4) पूर्ववत् हों, उसे **सौरभक** कहते हैं। लक्षण–**'त्रयमुद्‌गतासदृशमेव पदमिहतृतीयमन्यथा। जायते रनभगै ग्रंथितं कथयन्ति सौरभकमेतदीदृशम् (छ० मं०)।** उदाहरण–

स० ज० स० ल० न० स० ज० ग०

।।S ।S। ।।S । ।।। ।।S ।S। S

विनिवा रितोऽपि नयने न तदपि किमिहा गतोभ वान्।

र० न० भ० ग० स० ज० स० ज० ग०

S।S ।।। S।। S ।।S ।S। ।।S ।S। S

एतदे वतव सौरभ कं यदुदीरितार्थ मपिना वबुध्य ते ।।छ० सू० 5/27

ललित

ललित उद्‌गता' के तृतीय चरण में क्रमशः दो नगण (।।।, ।।।) और दो सगण (।।S, ।।S) हो, तथा अन्य तीन (1-2 एवं 4) चरण पूर्ववत् हों, उसे **ललित** कहते हैं। इस प्रकार इसके प्रथम एवं द्वितीय पादों में दस अक्षर, तृतीय पाद में बारह अक्षर और चतुर्थ पाद में तेरह अक्षर होते हैं। लक्षण–**'नयुगं सकारयुगलं च भवति चरणे तृतीयके। तदुदितमुरुयतिभिर्ललितं, यदि शेषमस्य सकलं यथोद्‌गता (छ० मं०)।** उदाहरण–

स० ज० स० ल० न० स० ज० ग०

।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ । ।।। ।।ऽ ।ऽ। ऽ

सततं प्रियंव दमनू न ममल हृदयं गुणोत्त रम्।

न० न० स० स० स० ज० स० ज० ग०

।।। ।।। ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।ऽ। ऽ

सुललि तमति कमनी यतनुं पुरुषं त्यजन्ति नतुजा तुयोषि तः ।। छ० सू०

वक्त्र

वक्त्र' के प्रतिचरण में आठ अक्षर होते हैं, किन्तु चार अक्षरों के अनन्तर एक यगण (।ऽऽ) अवश्य होता है। दूसरे और चौथे पाद में मगण तथा एक गुरु वर्ण होते हैं। यह एक विषमवृत्त माना जाता है। दूसरे आचार्य इसको अनुष्टुप् वृत्त मानते हैं। लक्षण–**'वक्त्रं युग्भ्यां मगौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टुभिख्यातम् (छ० मं०)। उदाहरण–**

य० म० ग० य०

1 2 3 4 ।ऽऽ ऽऽऽ ऽ ।ऽऽ

वक्त्राम्भोजं सदास्मेरं चक्षुर्नीलोत्पलं फुल्लम्।

य० म० ग० य०

1 2 3 4 ।ऽऽ ऽऽऽ ऽ ।ऽऽ

वल्लवीनां मुरारातेश्चेतोभृङ्गं जहारोच्चैः ।। छ० मं०

पथ्यावक्त्र

जिस वक्त्र के सम (2–4) पादों में चार अक्षरों के अनन्तर यगण न होकर जगण (।ऽ।) हो, तथा विषम (1–3) पादों में पूर्ववत् चार अक्षरों के अनन्तर यगण (।ऽऽ) हो, उसे **पथ्यावक्त्र** कहते हैं। (इसको भी अनुष्टुप् वृत्त मानते हैं।) लक्षण–**'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् (छ० मं०)। उदाहरण–**

य० ज०

1 2 3 4 ।ऽऽ 1 2 3 4 ।ऽ।

तदाशु कृतसन्धानं प्रतिसंह रसायकम्।

य० ज०

1 2 3 4 ।ऽऽ 1 2 3 4 ।ऽ।

आर्तत्राणा यवःशस्त्रं न प्रहर्तु मनाग सि ।। अभि०शा० 1/11

चपलावक्त्र

जिस वक्त्रके विषम (1–3) पादों में चार अक्षरों के अनन्तर यगण न होकर नगण (।।।) हो, तथा समपादों में पूर्ववत् चार अक्षरों के अनन्तर यगण (।ऽऽ) हो, उसे **चपलावक्त्र** कहते है। लक्षण–**'चपलाऽयुजोन्' (छ० सू०)। उदाहरण–**

न० य०

1 2 3 4 ।।। 1 2 3 4 ।ऽऽ

क्षीयमाणा ग्रदश ना वक्त्र निर्मांसनासाग्रा।

न० य०

1 2 3 4 ।।। 1 2 3 4 ।ऽऽ

कन्यका वा क्यच पला लभते धू र्तसौभा ग्यम् ।। छ० सू० ऽ/17

परिशिष्ट-क

संस्कृत-वृत्तदर्पण सलक्षणवृत्तानुक्रमणिका

ऋषभगजविलसित	भ्रत्रिनगैः स्वराङ्कमृषभगजविलसितम् ।	70
औपच्छन्दसिक	तत्रैवान्तेऽधिके गुरौ स्यादौपच्छन्दसिकं कवीन्द्रहृदयम् ।	34
कलहंस	सजसा सगौ च कथितः कलहंसः ।	62
कामक्रीडा	मा बाणाः स्युर्यस्यां सा कामक्रीडा संज्ञातव्या ।	69
कामदत्ता	नौ र्यौ कामदत्ता ।	55
कुटिला	म्भन्या गौ कुटिलम् ।	66
कुमारललिता	कुमारललिता ज्स्गा ।	41
कुसुमविचित्रा	नयसहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा ।	56
कुसुमस्तबक	सगणः सकलः खलु यत्र भवेत्तमिह प्रवदन्ति बुधाः कुसुमस्तबकम् ।	86
कुररीरुता	कुररीरुता नजभजै र्लगयुक् ।	64
कुसुमितलतावेल्लिता	स्याद् भूतर्त्वश्वैः कुसुमितलतावेल्लिता म्तौ नयौ यौ ।	75
केतुमती	असमे सजौ सगुरुयुक्तौ केतुमती समे भरनगाद् गः ।	90
क्रौञ्चपदा	क्रौञ्चपदा स्याद् भो मसभाश्चेदिषुशरवसुमुनि यतिरिनलघुगैः ।	84
गजगति	नभलगा गजगति ।	43
गीति	आर्याप्रथमार्ध समं यस्या अपरार्धमाह तां गीतिम् ।	32
गीतिका	सजजा भरौ सलगा यदा कथिता तदा खलु गीतिका ।	79
गीत्यार्या	गीत्यार्या लः ।	38
चण्डवृष्टिप्रपात	यदिह नयुगलंततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः ।	85
चण्डी	नयुगल सयुगल गैरिति चण्डी ।	61
चन्द्रलेखा	म्रौ मो यौ चेद्भवेतां सप्ताष्टकैश्चन्द्रलेखा ।	68
चन्द्रवर्त्म	चन्द्रवर्त्म निगदन्ति रनभसः ।	60
चन्द्रिका	ननततगुरुभिश्चन्द्रिकाश्वर्तुभिः ।	62
चपलार्या	दलयो र्द्वितीयतुर्यौ गणौ जकरौ तु यत्र चपला सा ।	31
चपलावक्त्र	चपलाऽयुजोन् ।	93
चामर	र्जर्जरास्तूणकम् ।	70
चारुहासिनी	अयुक् चारुहासिनी ।	35
चित्रपदा	चित्रपदा यदि भौ गौ ।	35
चित्रा [मात्रा]	चित्रा नवमश्च ।	37
चित्रा	चित्रा नामच्छन्दश्चित्रं चेत्त्रयो मां यकारौ ।	68
चित्रलेखा	मन्दाक्रान्ता नपरलघुयुता कीर्तिता चित्रलेखा ।	76
चूलिका	चूलिकैकोनत्रिंशदेकत्रिंशदन्तेग् ।	39
जघनचपला	प्राक् प्रतिपादितमर्धे प्रथमे प्रथमेतरे च चपलायाः लक्ष्माश्रयेत	31
	सोक्ता विशुद्धधीभि र्जघनचपला ।	31

परिशिष्ट-ख

यति-संख्या-सूचक असामान्य अभिधान

अङ्क	9 (नौ)	भूत	5 (पाँच)
अङ्ग	6 (छः)	भोगि	8 (आठ)
अक्ष	5 (पाँच)	मुनि	7 (सात)
अश्व	7 (सात)	युग	4 (चार)
अर्क	12 (बारह)	रन्ध्र	9 (नौ)
अब्धि	4 (चार)	रवि	12 (बारह)
आशा	10 (दस)	रस	6 (छः)
इषु	5 (पाँच)	रुद्र	11 (ग्यारह)
ईश	11 (ग्यारह)	लोक	7 (सात)
ऋतु	6 (छः)	वसु	8 (आठ)
करण	5 (पाँच)	वेद	4 (चार)
ग्रह	9 (नौ)	शर	5 (पाँच)
गुहवक्त्र	6 (छः)	शिव	11 (ग्यारह)
दिक्	10 (दस)	श्रुति	4 (चार)
दिनेश	12 (बारह)	स्वर	7 (सात)
नन्दा	9 (नौ)	सागर	4 (चार)
बाण	5 (पाँच)	सूर्य	12 (बारह)
भुवन	7 (सात)		

परिशिष्ट-ग

गणबद्ध संस्कृतवृत्त-सूची

गायत्री-षडक्षरा वृत्ति (6)

गणबद्धवृत्त	वृत्तनाम[1]
जज	सुमालती
जम	कञ्जा
जय	अरजस्का
तत	कामावतार
तम	वभ्रू
तय	तनुमध्या
तर	जला
तस	वसुमती
नन	दमनक
नम	गुणवती
नय	शशिवदना
नर	मणिरुचि
भम	सिन्धुरया
भय	कामललिता
भर	शुनक
मम	विद्युल्लेखा
मय	सुनन्दा
मर	नदी
मस	मुकुल
यम	शिखण्डिनी
यय	सोमराजी
रन	कच्छपी
रम	नीलतोया
रर	विमोह
सभ	गुरुमध्या
सम	सूचीमुखी
सय	विमला
सर	मृदुकीला
सस	रमणी

उष्णिक्-सप्ताक्षरा वृत्ति (7)

जमग	सुमोहिता
जयग	पद्मा
जरग	सुभद्रा
जसग	कुमारललिता
तनग	मधुकरिका
तभग	चूड़ामणि
तरग	भीमार्जन
तसग	भ्रमरमाला
नजल	सुवास
ननग	मधुमति
नमग	होला
नभग	मधुमती
नयग	सुरि
नरग	खरकरा
नसल	करहञ्च
भजग	शारदी
भनग	चित्र
भभग	सोपान
भमग	अधीरा
भसग	विधुवक्त्रा
मभग	सरल
ममग	शिप्रा
मरग	किर्मीर
मसग	मर्दलेखा
यसग	शिखा
रसग	उद्यता

1. इनमें उल्लिखित अधिकांश वृत्तों के नामान्तर मिलते हैं।

सजग	विमला
सरग	हंसमाला
सयग	रसधारि
ससग	नन्दितक

अनुष्टुप् अष्टाक्षरा वृत्ति (8)

जतगग	वितान
जयगग	विराजिकरा
जरगग	यशस्करी
जरगल	सुचन्द्रप्रभा
जरलग	प्रमाणिका
तजलग	अनुष्टुप्
ततगग	कराली
तनगग	सन्ध्या
तरगग	विभा
तरलग	नाराचिका
तसगग	श्यामा
नजगग	चित्तविलासित
नजलग	ललितगति
नतगग	वान्तभार
ननगग	रतिमाला
ननलग	सुविकसितकुसुम
नभलग	गजगति
नरगग	कुररिका
नरलग	सुमालती
नसगग	रुद्राली
नसलग	कमल
भतलग	माणवक
भनलग	नदी
भभगग	चित्रपदा
भरलग	नागरक
मनगग	हंसरुत
मभलल	अतिजनि
ममगग	विद्युन्माला
मयलल	मन्थरि
मरलग	क्षमा
रजगग	सिंहलेखा
रजलल	आखेट
रनलल	कुशक
ररगग	पद्मिनी
रसगग	गाथ
सनलग	विमलजला
सरगल	सुविलासा
ससलग	मही

बृहती-नवाक्षरा वृत्ति (9)

जजर	अवनिजा
जतर	चारुहासिनी
जसम	निर्विन्ध्या
तनम	मकरलता
तनय	कामा
तभय	रुचिरा
नजय	शशिलेखा
नजर	बुद्बुद
ननन	चुलक
ननम	भुजगशिशुभृता
ननर	उपच्युत
ननस	लघुमणिगुण
नयस	सारंगिका
नरर	बृहतिका
नसय	विम्ब
भजस	उदय
भभर	उत्सुक
भमम	वक्त्र
भमस	मणिमध्या
मतय	सुन्दरलेखा

मनय	मकरलता
मभस	सिंहाकान्ता
ममम	रूपमाली
मसस	कनक
यमम	मेघालोक
ययय	बृहत्य
रजर	कामिनी
रनर	भद्रिका
रनस	हलमुखी
ररर	महालक्ष्मी
सजज	तोमर
सजर	भुजङ्गसंगता
सजस	अक्षि
सतर	निभालिता
ससम	तार
ससस	सौम्या

पंक्ति-दशाक्षरा वृत्ति (10)

जजजग	उषिता
जजयग	ऐन्द्री
जसमग	वीरान्ता
तजजग	उपस्थिता
तजरग	नमेरु
तनसग	उन्नाल
ततरग (यति-5)	आन्दोलिका
तयभग	सुषमा
तयसग	मदिराक्षी
नजनग	त्वरितगति
नजयग	विपुलभुजा
नननग	निलया
नरजग	मनोरमा
भतनग	मृगचपला
भनमग	बन्धूक
भभभग	सारवती
भभमग	बन्धूक
भमजग	दीपक माला
भमतग	दीपकमाला
भमनग	वृत्तसमृद्धा
भमसग	रुक्मवती
मनजग	पणव
मननग	कुमुदिनी
मनयग	पणव
मभनग	हंसी
मभभग	हंसक्रीडा
मभसग	मत्ता
मसजग	शुद्धविराट्
मससग	उद्धत
रजरग	मयूरसारिणी
रमसग	कालिका
रयजग	पंक्तिका
रसजग	लालिनी
रससग	मणिराग
सजजग	संयुता
सजसग	माला
सतयग (यति-5)	कलगीत
ससजग	सहजा
सससग	मेघवितान

त्रिष्टुप्-एकादशाक्षरा वृत्ति (11)

जजजलग	खटका
जजसलग	नामस
जतजगग	उपेन्द्रवज्रा
जतसलग	कनककामिनी
जसजगग	सरोजवनिका
जसतगग	उपस्थित
जसमगग	प्रफुल्लकदली
जसयलग	संगता
जसरगग	शिखण्डित

जरजगग	विलासिनी	मभसगग	पीनश्रोणि
तजजगग	उपस्थिता	मममगग	मालती
तजजलग	मोटनक	मसजगग	विश्वविराट्
ततजगग	इन्द्रवज्रा	मसभगग	अन्तर्वनिता
तततगग	लयग्राहि	ययलग	भुजङ्गी
तततगल	संश्रयश्री	ययरलग	प्रपातावतार
ततनगग	उदितविजोहा	रजरलग	श्येनी
तननलग	मुखचपला	रजसलग	उपदारिका
तनरलग	उद्यत	रनभगग	स्वागता
तभजलग	जिह्माशय	रनरलग	रथोद्धता
तभतगग	ईहामृगी	रयथगग	वल्लवीविलास
तममगग	आराधिनी	रससलग	अच्युत
तयमगग	मेघध्वनिपूर	सजयलग	सारणी
नजजलग	सुमुखी	सभरलग	सीधु
नजमगग	विलुलितमञ्जरी	सभसलग	हरिकान्ता
नजयगग	वार्त्ताहारी	सससलग	उपचित्रा
नतनलग	असुविलास	**जगती-द्वादशाक्षरा वृत्ति (12)**	
नननगग	दमनक	जजजज	मौक्तिकदाम
नननलग	दमनक	जतजर	वंशस्थ
ननरगग	कुपुरुष	जभजर	प्रियंवदा
ननरलग	भद्रिका	जभसय	स्मृति
ननसगग	वृन्ता	जभयर	गलितनारा
नयनलग	कमलदलाक्षी	जरजर	वसन्तचामर
नयभगग	अनवसिता	जसजस	जलोद्धगति
नयसलग	सौरभवर्द्धिनी	ततजर	इन्द्रवंशा
नररलग	राजहंसी	तततत	सारङ्ग
नस्नगग	अशोका	तननय	विरतिमहती
भतनगग	मौक्तिकमाला	तभजर	ललिता
भभभगग	दोधक	तयतय	मणिमाला
भभरगग	रोचक	तयमय	वाहिनी
मततगग	शालिनी	तरजर	अन्तर्विकास वासक
मभतगग	वातोर्मि	नजजय	तामरस
मभ्नलग	भ्रमरविलसित	नजजर	मालती

नजभय	नवमालिनी
ननजस	कमललोचना
नननन	तरलनयन
ननमर	उज्वला
ननभय	पुट
ननमर	ललित
ननरय	कामदत्ता
ननरर	प्रमुदितवदना
नभजय	द्रुतपद
नभजर	प्रियंवदा
नभनय	द्रुतपद
नभभर	द्रुतविलम्बित
नयनय	कुसुमविचित्रा
नररर	वसन्ता
भतनस	ललना
भभभभ	मोदक
भभसस	ललना
मभरय	पुण्डरीक
मभसम	जलधरमाला
मममम	विद्याधर
मममस	विक्रान्ता
ममसम	लीलारत्न
ममयय	वैश्व देवी
यययय	भुजंगप्रयात
रजरज	समान
रनभस	चन्द्रवर्त्म
रयनय	कुमुदिनी
रररर	स्रग्विणी
सजसस	प्रमिताक्षरा
सयसय	केकिरव
सससस	तोटक
सरसर	सुतल

अति जगती-त्रयोदशाक्षरा वृत्ति (13)

जजजजग	गुणसारिका
जजजरग	अतिरंह
जतसजग	मञ्जुभाषिणी
जभसजग	रुचिरा
जसतसग	उपस्थित
तभजजग	अभ्रक
तभरजग	प्रभावती
तभसजग	प्रभावती
नजजरग	मृगेन्द्रमुख
नजततग	किरात
नजनसग	मदकलिता
नततत्तग	परिवृढ
ननततग	चन्द्रिका
नततरग	क्षमा
ननतरग	चन्द्रिका
ननतसग	गौरी
ननननग	चपला
ननननल	अहमरू
नननसग	गौरी
ननमरग	क्षमा
ननरजग	अशोकपुष्प
ननरयग	चन्द्रिका
ननसरग	गौरी
ननससग	चण्डी
नभसजग	विरोधिनी
नयनयग	रसधारा
नसजजग	उपगतशिखा
नसजतग	कठिनी
नसततग	विद्युत
नसररग	चन्द्रलेखा
नरनरग	कीररेखा
भनजजग	पङ्कवती

भनजजल	पङ्कावली	नततगग	परीवाह
भभभभग	अङ्गरुचि	नततजगग	नन्दीमुखी
भभभमग	वासविलासवती	नननगग	सुपवित्र
भरनभग	लवलीलता	ननभनलग	प्रहरणकलिका
भसननग	अर्धकुसुमिता	ननमयलग	कमला
मतयसग	मत्तमयूर	ननरसलग	अपराजिता
मतसरग	कोड्डम्भ	ननससगग	विभ्रमा
मनजरग	प्रहर्षिणी	नभनतगग	शरभा
मभनयग	प्रज्ञामूल	नमरसलग	सिंह
मभभभग	मोहप्रलाप	नरततगग	लक्ष्मी
मभसमग	लीलालोल	नरनरलग	सुकेसर
ममजजग	श्रेयोमाला	भजजभलग	अञ्चलवती
ममतनग	विद्युन्माला	भजसनगग	इन्दुवदना
मममभग	सव्याली	भजसनलग	इन्दुवदना
यमररग	चञ्चरीकावली	भननलग	चक्र
ययजसग	शलभलोला	भभभभगग	तरङ्गक
ययसजग	करपल्लवोद्गतां	भभरसलग	दर्दुरक
यययल	कन्द	भसततगग	पुष्पशकटिका
सजसजग	मञ्जुभाषिणी	मतनमगग	वासन्ती
सनजनग	उपसरसी	मतनसगग	असंबाधा
सनसतग	बुद्बुदक	मतयनलग	भूतलतन्वी
सभननग	वनिताक्षी	मभनतगग	शरभललित
सभनसग	रति	मभनयगग	कुटिला
सयसजग	सुदन्त	मभनयलग	चन्द्रौरस
ससससग	तारक	मरततगग	लक्ष्मी
शक्करी-चतुर्दशाक्षरा वृत्ति (14)		मरभनलग	निर्मुक्तमाला
तभजजगग	वसन्ततिलका	मसतभगग	लक्ष्मी
तभसजगग	वेलान्तर	मसमभगग	लोला
तयभभगग	रतिरेखा	रनभभगग	वलना
तयसभगग	कलहंसी	ररततगग	बभ्रुलक्ष्मी
तयसमगग	वंशोत्तसा	रसजनलग	गगनगतिका
नजभजगग	कुमारी	सजजभलग	कलहेतिका
नजभजलग	कुरीरुता	सजनरलग	सुदर्शना

सजसयलग	पथ्या
सजसरलग	नन्दिनी
सभनयगग	कुटिल
सभसजगग	सुनन्दा
ससससलग	विनन्दिनी

अतिशक्करी-पञ्चदशाक्षरा वृत्ति (15)

जसनभय	मयूरललित
तजससय	शिशु
तभजजर	मृदङ्ग
तभरनस	शङ्कावली
तयभभस	शीर्षविरहित
तयममम	वज्राली
नजभजर	सुकेसर
ननतभर	उपमालिनी
ननननस	शशिकला
ननभभर	गौ
ननमयय	मालिनी
ननमरर	चन्द्रोद्योत
ननरनर	चमरीचर
ननरयय	भोगिनी
नसनरर	विपिनतिलक
भजसनर	निशिपाल
भममसस	संगतक
भमसभस	भूतलतन्वी
भयससय	केतन
मभममम	चार्वटक
ममतनभ	वाणीभूषा
ममममम	कामक्रीड़ा
मममयय	चञ्चला
मरमयय	चन्द्रलेखा
ययययय	सिंहपुच्छ
रजरजर	चामर
रनभभर	उत्सर
ररततम	चन्द्रलेखा
ररतयय	चन्द्रकान्ता
ररममय	चन्द्रलेखा
ररररर	लास्यकरी
सजजनय	अतिलेखा
सजजभर	मनोहंस
सजससय	वृषभ
सभसभम	बहुलाभ्र
ससससस	भ्रमरावलिका

अष्टि-षोडशाक्षरा वृत्ति (16)

जरजरजग	पञ्चचामर
तननयसग	भोगावलि
तमयरतग	मन्दाकिनी
तमरमयल	दन्तालिका
तयसभसलग	सूतशिखा
नजभजतग	गरुडरुत
नजभजरग	वाणिनी
नजरभभग	मणिकल्पलता
नननननग	चलधृति
नननननल	अचलधृति
नभजजजग	मङ्गलमङ्गना
नभजसनग	नरशिखी
नमजसनग	सुललिता
नयनयसग	कान्त
भभभभभग	खगति
भभभभसग	शरमाला
भरनननग	ऋषभगजविलसित
भरनरनग	धीरललिता
भरयननग	वरयुवति
भसमतनग	चकित
मतससतग	कोमललता
मनसतरग	सुरतललिता
मभनमनग	मदनललिता

मभसमसग	मालावलय
मभमभमग	ब्रह्म
यमनसरग	प्रवरललित
रजरजरग	चित्र
रजरजरल	चञ्चला
रननननग	ललना
सजससजग	उद्गता
सतयसभग	प्रमदा
सभतयसग	अनिलोहा
सभमसभग	स्खलितविक्रमा
ससननमग	वेल्लिता
सससससग	कलधौतपद

अत्यष्टि-सप्तदशाक्षरा वृत्ति (17)

जसजसयलग	पृथ्वी
जतजसयलग	कालसारोद्धत
नजजयनलग	रुचिरमुखी
नजभजजगग	वाणिनी
नजभजजलग	नर्दटक
नजभजभलग	समदविलासिनी
नननननगग	वसुधारा
नननननलल	अचलनयन
ननभसरलग	घनमयूर
ननमननगग	सलेखा
ननमरसलग	हरि
नसजभजगग	शायिनी
नसजसयलग	मालाधर
नसमततगग	पद्म
नसममयलग	रोहिणी
नसमरसलग	हरिणी
नयतनमगल	कर्णस्फोट
भनयननगग	तितिक्षा
भतजजजलग	वंशल
भरनभनलग	वंशपत्रपतित
भसजसयलग	बालविक्रीडित
मभनततगग	मन्दाक्रान्ता
मभनमयलग	हारिणी
मभनरसलग	भाराक्रान्ता
मममममगग	मानाक्रान्ता
यभनसभलग	कान्ता
यमनसभलग	शिखरिणी
यमनसरगल	कान्तार
सभसभसगल	फल्गु
ससजभजगग	अतिशायिनी
ससभभनलग	शिशुवनिता

धृति-अष्टादशाक्षरा वृत्ति (18)

जततततत	पतङ्गवाद
जसजसनर	पार्थिव
नजभजजर	वसुपदमञ्जरी
नजभजजर	नन्दन
ननमतभर	ललित
ननममयय	चन्द्रमाला
ननरनरर	पर्विणी
ननरभरर	लता
ननरररर	नाराच
ननससतय	पङ्कजवक्त्रा
नरनरनर	षट्पदरित
नसमतभर	हरिणीपद
नसममयय	अनङ्गलेखा
भभभभनय	विच्छित्ति
भभभभभभ	हीरकहारधार
भभभभभस	अश्वगति
भरनननस	भ्रमरपद
मतनजभर	कुरङ्गिका
मतनययय	कुसुमितलतावेल्लिता
मननततम	चित्रलेखा
मभनजभर	चल

मभनययय	चन्द्रलेखा
मभनयरर	केसर
ममभमयय	सिंहविस्फूर्जित
ममभमसम	मञ्जीरा
मरभयरर	वाचालकाञ्ची
मसजजभर	हरिणप्लुत
मसजसतस	शार्दूलललित
मसजसरम	शार्दूल
मससररर	विलास
यमनसतस	सुधा
ययययय	क्रीडचन्द्र
यससजनम	परामोद
रतजजभर	चर्चरी
रररररर	सिन्धुसौवीर
रसजयभर	वरकृत्तन
सजसजतर	बुद्बुद
सतनययय	मन्दारमाला
सनजनभस	सुरभि
ससससससस	परिपोषक

अतिधृति–ऊनविंशत्यक्षरा वृत्ति (19)

जनभसनजग	वरूथिनी
जसजसजसग	रतिलीला
जसजसतभग	समुद्रतता
नजभयभजग	रचना
नजभयसजग	रचना
नननजननल	चन्द्रमाला
नननतनग	कनकलता
ननननननग	धवल
ननरजरजग	प्रपञ्चचामर
ननरनयजग	निर्गलितमेखला
नभरसजजग	तरल
नयममजमग	झिल्लीलीली
मतनसततग	बिम्ब
मतनसररग	पुष्पदाम
मननतनमग	विधुनिधुवन
मरभससजग	माधवीलता
मरभनयनग	सुरसा
मसजसततग	शार्दूलविक्रीडित
मसजनजतग	शिलीमुखोजृम्भित
मसजसनजग	वायुवेगा
मसजसननग	वायुवेगा
यभनयजजग	मणिमञ्जरी
यमननररग	मुग्धक
यमनसजजग	मकरन्दिका
यमनसततग	छाया
यमनसभतग	छाया
यमनसररग	मेघविस्फूर्जिता
रजरजरजग	कलापदीप
रनरनरनग	टङ्कण
रभजततग	वल्लकी
ररररररग	लोललोलम्बलील
रससतजजग	ऊर्जित
सतयभममग	शम्भु
ससससससग	तरुणीवदनेन्दु

कृति–विंशत्यक्षरा वृत्ति (20)

जरजरजरलग	नाराच
ततनततनगग	वेश्यारत्न
तभजननगग	विष्वग्वितान
तभजभजभलग	शशाङ्करचित
नजनभसनलग	मदकलनी
नतजननतगग	हारावतार
ननननननलग	कनकलता
नभभमससलग	मुद्रा
नरनरनतगग	संलक्ष्यलीला
भनयननरलग	दीपिकाशिखा
भभभभरसलग	नन्दक

भममतनसगग	भेकालोक
भरनभभरलग	उत्पलमालिका
मनसनमयलग	सद्रत्नमाला
मभसभतयगग	वाणीवाण
ममननततगग	भूरिशोभा
मरभनततगग	सुवंशा
मरभनयभलग	सुवदना
यमननततगग	शोभा
ययययययलग	अबन्ध्योपचार
रजरजरजगल	गण्डका
रजरजरजलग	मालव
रससससससलग	पुटभेद
सजजभरसलग	प्रमदानन
सभरनमयलग	मत्तेभविक्रीडित
ससजभरसलग	गीतिका

प्रकृति-एकविंशत्यक्षरावृत्ति (21)

तरभनजभर	कथागति
नजजजजभर	वनमञ्जरी
नजभजजजर	सरसी
नजततततस	ललितललाम
ननममजरम	मन्दाक्षमन्दर
नरनरनरर	कलमतल्लिका
नयमभससस	कमलशिखा
भभभभभभभ	सवैया
भभभभभभर	मत्तविलासिनी
भरननजजय	नरेन्द्र
भरनरनरर	ललितविक्रम
ममममतरम	अशोकलोक
ममतननस	मत्तक्रीडा
मरभनयय	स्रग्धरा
मरभनयरर	दरावलोक
ययययययय	विद्युदाली
रजततननस	चन्दनप्रकृति
रनरनरनर	कनकमालिका
रसनजनभर	पद्मसद्म
सरनससससस	शरकाण्ड
सससससससस	सवैया/प्रतिमा

आकृति-द्वाविंशत्यक्षरा वृत्ति (22)

तभयजसरनग	मत्तेभ
तभरसननजग	भोगावली
तभररसरनग	भुजङ्गोद्धत
नजभजभजभग	अश्वललित
नननननननग	अचलविरति
ननननमरयग	द्रुतमुख
नभजभजभजग	मदनसायक
भतनतनमसग	अर्भकमाला
भमसतयसभग	निष्कलकण्ठी
भभभभभभभग	मदिरा
भरनरनरनग	भद्रक
मततमममरग	भीमाभोग
मतयननननग	वरतनु
ममतननगसग	हंसी
मसजयभभनग	लालित्य
मसजसजसजग	दीपार्चि
मसभनजरसग	भस्त्रानिस्तरण
मसरसतजनग	लालित्य
यययययययग	वीरनीराजना
रररररररग	कङ्कणक्वाण
सजतनसररग	महास्रग्धरा
सततनसररग	महास्रग्धरा
सससससनयभग	स्वर्णाभरण
सससससससग	सवैया/अयमान

विकृति-त्रयोविंशत्यक्षरा वृत्ति (23)

जजजजजजजलग	मानिनी/सवैया
जसजसययलग	वृन्दारक
तजजजजजजलग	शङ्ख

नजजजजजजलग	हंसगति
नजभजभजजलग	अश्वललित
नजभजभजभलग	अद्रितनया
ननननननननलग	अमरचमरी
ननभतजयसगग	परिधानीय
नरननभभभगग	मन्थरायण
भतनमभननगग	इन्द्रविमान
भभभभभभभगग	मत्तगजेन्द्र
भमनभनननगग	पुष्पसमृद्धा
भमसभनननलग	चपलगति
भसभभसजभगग	विलासवास
ममतनननलग	मत्ताक्रीड़ा
मममसभसतलग	पारावारान्तरस्थ
रनरजरनरलग	चित्रक
रनरनरनरलग	चित्रक
ससभसतजजलग	सुन्दरी

संस्कृति-चतुर्विंशत्यक्षरावृत्ति (24)

नजजजजजजय	समाहित
नननयमनजय	विगाहितगेह
ननभनजननय	ललितलता
ननरररररर	मेघमाला
नभजभजभजर	महामदनसायक
नयभतनननस	संभ्रान्ता
भतनसभभनय	तन्वी
भभभतननस	द्रुतलघुपदगति
भभभभभभभभ	किरीट
भभससनननसम	धौरेय
भमसभनननय	हंसपद
मभयमनभनस	वेश्याप्रीति
मसजसततभर	विभ्रमगति
यययययययय	भुजङ्ग
रजभसजभसय	भासमान/विम्द
रररररररर	स्वैरिणीक्रीडन
सससससससस	दुर्मिला

अतिकृति-पञ्चविंशत्यक्षरावृत्ति (25)

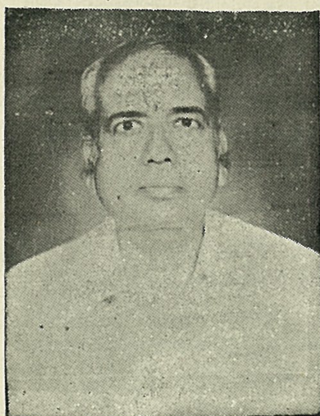
तभयभससससजग	व्याकोशकोशल
तयभभननननग	हंसपदा
नजजयनननग	चपल
नननसभभभग	हंसलय
भमसभननननग	कौञ्चपदा
मननतयननसग	विरहविरहस्य
मममममतयमग	मन्तेभ
रसजजभरसयग	शरभूरिणी
सजनजभनरनग	कलकण्ठ

उत्कृति-षड्विंशत्यक्षरावृत्ति (26)

नजनसभनननलग	वेगवती
नजभजजजभजलग	सुधाकलश
ननसमनजरजगग	चारुगति
नननननननगग	वनलतिका
नयनयननननगग	मकरन्द
भनजनसननभगग	रञ्जन
भननसमनननलग	आपीड
मनननननसगग	अपवाह
मभसमनयतनगग	भसलशलाका
ममतनननरसलग	भुजंगविजृम्भित
मयनतननरयलग	भुजंगेरित
मयनतननरयलग	भुजंगेरित
ययययययययलग	चेटीगति
रसजजभरसजलग	काकलीकलकोकिल

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. अग्निपुराण
2. अमरकोष
3. अभिज्ञानशाकुन्तल
4. अविमारक नाटक
5. ईशावास्योपनिषद्
6. उत्तररामचरित
7. ऋक् सर्वानुक्रमणी
8. ऋक् प्रातिशाख्य
9. ऋग्वेद
10. कौषितकि ब्राह्मण
11. काव्य कल्लोलिनी
12. किरातार्जुनीय
13. छन्दःशास्त्र
14. छान्दोग्योपनिषद्
15. छन्दोमञ्जरी
16. छन्दोऽनुशासन
17. जयदेवच्छन्द
18. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
19. निरुक्त
20. नाट्यशास्त्र
21. नारदीयपुराण
22. नैषधीयचरित
23. पाणिनीय शिक्षा
24. प्राकृतपैङ्गल
25. प्रतिमा नाटक
26. प्रसन्न राघव
27. बृहत् स्तोत्ररत्नाकर
28. भर्तृहरिशतकत्रय
29. भट्टिकाव्य
30. भामिनीविलास
31. मनुस्मृति
32. महाभारत
33. मालविकाग्निमित्र
34. मुण्डकोपनिषद्
35. मेघदूत
36. मेदिनी
37. याज्ञवल्क्यस्मृति
38. रघुवंश
39. वाग्वल्लभ
40. वाल्मीकिरामायण
41. विक्रमोर्वशीय
42. वृत्तमञ्जरी
43. वृत्तरत्नाकर
44. स्वप्नवासवदत्त
45. सायण
46. साहित्यवैभव
47. सिद्धान्तकौमुदी
48. सुवृत्ततिलक
49. सौन्दरनन्द
50. संस्कृतसाहित्य का इतिहास–पं० बलदेव उपाध्याय
51. शिशुपालवध
52. श्रुतबोध
53. श्रीमद्भगवद्गीता
54. श्रीमद्भागवत



डा० श्री इन्द्रनाथ झा

पिता–	स्व० गिरिधर झा 'विकल', 'विशारद' लेखक एवं चित्रकार
ग्राम–	मंगरौनी-वर्तमान-पिलखवाड़, जि० मधुबनी
जन्म–	पौषकृष्ण दशमी, शकाब्द 1864
योग्यता–	एम० ए० (द्वय-संस्कृत एवं मैथिली), साहित्याचार्य, पी-एच० डी०
वृत्ति–	उपाचार्य एवं अध्यक्ष के पद पर मारवाड़ी महाविद्यालय, दरभंगा के संस्कृत विभाग में कार्यरत।
प्रकाशितकृति–	मैथिली के विभिन्न पत्रिकादि में निबन्धादि प्रकाशित। आकाशवाणी दरभंगा से कतिपय रचना प्रसारित।
वर्तमान निवासस्थान–	प्रोफेसर कालोनी दिग्घी पश्चिम, दरभंगा